॥२१७॥

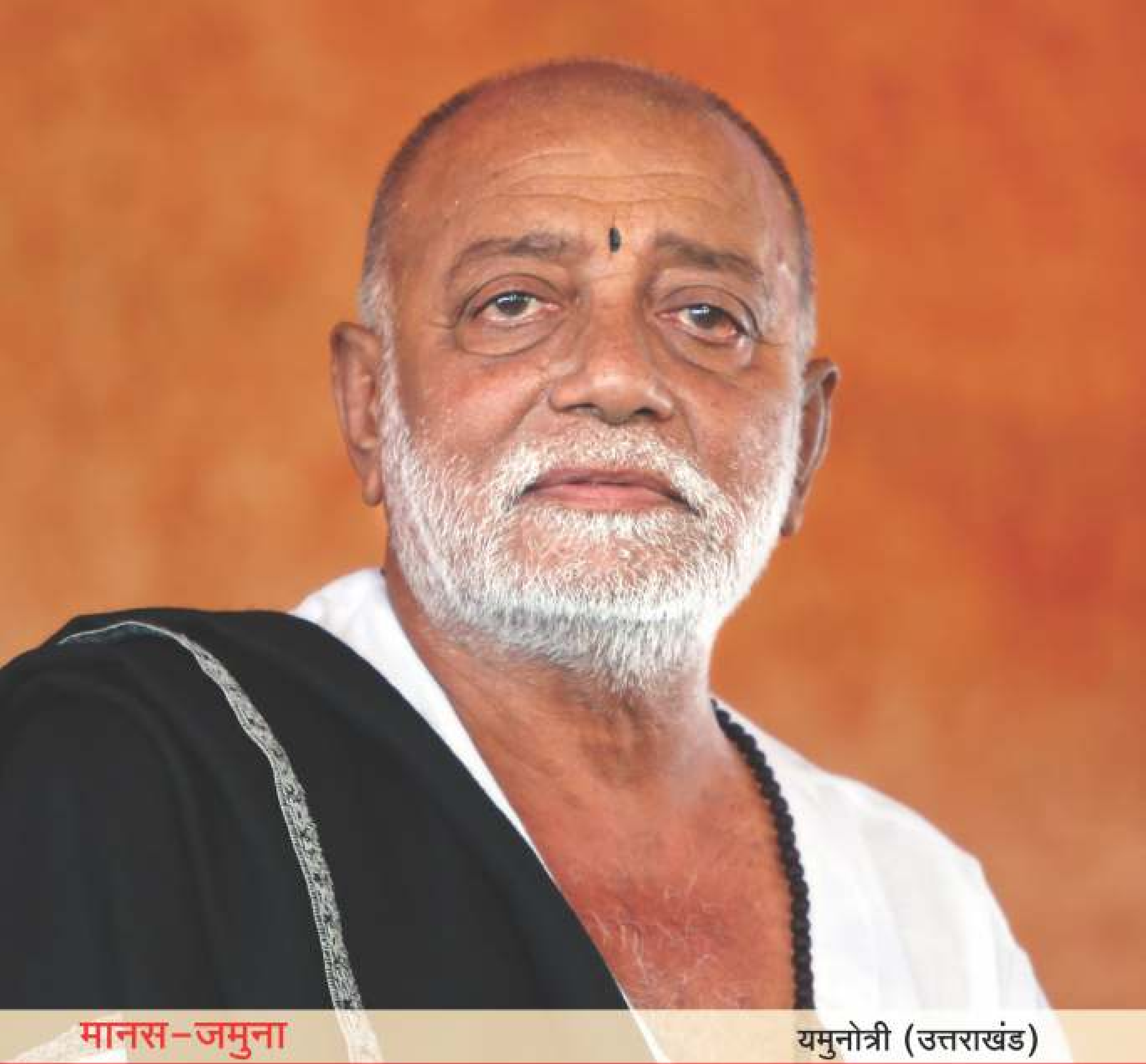

मानस-जमुना

यमुनोत्री (उत्तराखंड)

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

जम गन मुहँ मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी।।
बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलि मल हरनि सुहाई।।

।। रामकथा ।।

मानस–जमुना

मोरारिबापू

यमुनोत्री (उत्तराखंड)

दिनांक : ०७-०५-२०१६ से १५-०५-२०१६

कथा-क्रमांक : ७९४

प्रकाशन :

नवम्बर, २०१७

प्रकाशक

श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,

तलगाजरडा (गुजरात)

www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट

© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक

नीतिन वडगामा

nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क–सूत्र :

ramkathabook@gmail.com

+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स

स्वर एनिम्स

प्रेम–पियाला

परमपावन तीर्थस्थली यमुनोत्री (उत्तराखंड) में मोरारिबापू ने ता.७–५–२०१६ से १५–५–२०१६ के दिनों में रामकथा का गान किया। 'मानस–जमुना' विषय पर केन्द्रित हुई इस कथा में बापू ने जगद्गुरु आदि शंकराचार्य एवम् श्रीमद् वल्लभाचार्य विरचित 'यमुनाष्टक' के परिप्रेक्ष्य में अपना दर्शन प्रकट किया। साथ ही 'रामचरित मानस' में अठारह बार–पूर्णांक में प्रयुक्त यमुनाजी के संदर्भ में भी अपने निजी विचार व्यक्त किये।

यमुनाजी प्रति अपने अनुबंध का बापू ने स्वीकार किया और कहा कि मैं कृष्ण उपासक हूं। हम निम्बार्की है, कृष्णपरंपरा के है इसलिए मेरे साथ यमुना जुड़ी हुई है। तीर्थक्षेत्र यमुना की बहुत बड़ी महिमा है और मैं भरोसे साथ कहता हूं, यमुना आदमी की सोच बदल देती है। यमुनाजी की ये ताकत है।

यमुनाजी के करीब–करीब सोलह लक्षण है और यमुनाजी के ये सोलह लक्षण 'रामचरित मानस' के भी है। यमुनाजी का साक्षात् स्वरूप ये 'रामचरित मानस' है, ऐसा सूत्रात्मक निवेदन करते हुए बापू ने कहा कि यमुनाजी उपर से नीचे आई है, 'रामचरित मानस' भी शंकर के मुख से आखिरी व्यक्ति तक गई है। यमुनाजी के दो कुल है, दो किनारे हैं। हमारी मानस–जमुना के भी दो किनारे हैं। 'लोक बेद दुई मंजुल कुला।' कथा की यमुना ये दो कुलों को छूती हुई बह रही है। यमुना श्यामवर्णी है। 'रामचरित मानस' भी श्यामवर्णी है। यमुनाजी कइयों का परिपालन करती है। 'रामचरित मानस' भी हम जैसे कईयों का परिपालन करता है। यमुनाजी आखिर में गंगा को मिलकर समुद्र में–गंगासागर में मिल जाती है। 'रामचरित मानस' की कथा रामस्वरूप में हमें लीन कर देती है। जमुनाजी का प्रवाह सतत चलता है। 'मानस' की कथारूपी जमुना का प्रवाह भी सतत चलता रहता है।

बापू ने इस कथा में 'अनंतगुणभूषिते' यमुना के नव गुण साररूप में स्पष्ट किये और यमुना रसरूपा, जलरूपा, प्रवाहरूपा है तब शीतलता, स्वच्छता, मधुरता इत्यादि यमुनाजी में निहित जल के नव गुण–नव स्वभाव का परिचय दिया। और मन, जिजीविषा, इच्छा–एषणा, सत्त्व और पुण्य जैसी उपनिषद कथित पांचों गांठो का जमुनाजी नाश कर देती है। इन सभी ग्रंथियों से यमुनाजी मुक्त करती है, ऐसा निवेदन भी किया।

यमुनाजी के बारे में साम्प्रतकालीन समस्या के संदर्भ में भी बापू ने दो–टूक कहा कि यमुनाजी की समस्या देश में है कि यमुना का जल मथुरा तक पहुंचता नहीं है! केवल वैष्णवसमाज और आचार्यचरण उसके लिए प्रयत्न करे ऐसा नहीं, पूरे देश को उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए कि यमुनाजी मूल रूप में मथुरा पहुंचनी चाहिए। लोग कितनी श्रद्धा से यमुनास्नान के लिए जाते है! और ये मूल प्रवाह ही न पहुंचे! कुछ जो भारत की आस्थायें है इस आस्था को हानि–लाभ के गणित से मुक्त रखकर बरकरार रखनी चाहिए।

'मानस–जमुना' रामकथा में बापू ने श्री यमुने महाराणी को केन्द्र में रखते हुए तुलसीदासजी ने जमुनाजी का दर्शन किस–किस रूप में किया है उसके बारे में अपना दर्शन प्रकट किया। 'मानस' उपरांत 'विनयपत्रिका', 'रामाज्ञाप्रश्न', 'कृष्णगीतावलि' जैसे अन्य तुलसी–साहित्य में भी जहां–जहां यमुनाजी का संकेत है उसका संदर्भ भी बापू ने दिया और यूं विशाल दृष्टिकोण से यमुनाजी का परिचय करवाया।

– नीतिन वडगामा

साधु कभी दसमुख नहीं होता, साधु पंचमुख होता है

जम गन मुहँ मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी।।
बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलि मल हरनि सुहाई।।

बाप! यमुना महाराणी की अहेतु और असीम कृपा से इस परम पावन स्थान में, यमुनोत्री में रामकथा का आयोजन आज से आरंभ हुआ है। श्याम सुंदर श्री यमुना के, महाराणीजी के चरणों में प्रणाम करते हुए, यहां की समस्त भौतिक, दैविक और आध्यात्मिक चेतनाओं को प्रणाम करते हुए, आप सभी मेरे श्रावक भाई-बहन सभी को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। जय सीयाराम।

मेरे मन में बहुत समय से ये मनोरथ था कि कभी यमुनोत्री में रामकथा हो। और ये सुंदर योग बना कि हमारे रूपेश गार्डनर, जो खुद को माली कहता है। उसके पूरे परिवार और नाथद्वारा परिवार का भी ये परम वैष्णवी संकल्प कि यमुनोत्री में रामकथा हो और ये दिन आज आया। मुझे व्यक्तिगत रूप से बहुत प्रसन्नता है। क्योंकि इन देवस्थानों में ये जो देवीभूमि है उसमें जाकर भगवद्चर्चा करना ये अपनेआप में बहुत बड़ी उपलब्धि है। हम सब ने कोई जन्म में अच्छे कर्म किए होंगे उसका परिणाम है। क्योंकि मैंने आते ही कहा मदन भैया को कि बड़ा दुर्गम काम है भैया! मैं यहां के सभी पुरोहितगण जो इन देवस्थानों में रहकर यहां का सब संभालते हैं, दिल से इस रामकथा में स्वागत करता हूं, प्रणाम करता हूं। प्रशासन से लेकर सबने इसमें बड़ा सहयोग दिया है। सबको मैं बहुत-बहुत धन्यवाद देना चाहता हूं। दुर्गम स्थान में आयोजन है। ये तो होना है तभी होता है ऐसा प्रेमयज्ञ! वो भी यमुनोत्री में! ये सब ऐतिहासिक घटनाएं होंगी साहब! क्योंकि मेरी व्यासपीठ इतनी सस्ती नहीं कि कहीं भी चली जाय! इसीलिए व्यासपीठ स्वयं कभी-कभी यजमान को पसंद करती है। तो बड़ी प्रसन्नता है।

तो बाप! आप सब बहुत सहयोग करेंगे। मुझे पक्का विश्वास है। मेरी ओर से आपको आदर भी देता हूं, स्वागत भी करता हूं और आप से सहकार की मांग भी करता हूं कि प्रेम से कथा सुनो, कहीं इधर-उधर गंदगी भी मत करना। तीर्थ का गौरव बढ़े ऐसे रहना। इस कथा का विषय रहेगा 'मानस-जमुना।' वैसे तो 'यमुना' है, लेकिन तुलसी 'ज' शब्द का

प्रयोग कर रहे हैं। इसीलिए मैं उसीको ही रखूंगा 'मानस-जमुना।' 'रामचरित मानस' में अठारह बार यमुनाजी के संदर्भ मिले हैं। पूर्णांक में संदर्भ है। उसको कभी 'रवितनया' कहा, कभी कुछ कहा, कभी कुछ कहा। 'जमुना' केवल तीन बार तुलसी ने कहा है। तो मैंने सोचा गुरुकृपा से कि इस कथा का नामकरण हम रखें 'मानस-जमुना।' पहले सोचा कि 'मानस-यमुनोत्री' नाम रख दूं, लेकिन मैंने सोचा कि तुलसी का ही शब्द उठाउं।

हमारे ग्रंथों में यमुनाजी की बड़ी महिमा है साहब! यमुनाजी को ज्यादातर हम लोगों ने केवल एक वैष्णव परंपरा का ही अष्टक मान लिया है। यमुनाजी के तत्त्व को केवल इतने में हम सीमित कर बैठे हैं! यमुनाजी पर कई मनीषियों ने अपने उद्गार अनुभव के साथ लिखा है। इसमें सबसे पहले हैं जगद्गुरु आदि शंकराचार्य।

कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीं
मुरारिप्रेयस्कां भवभयदवां भक्तवरदाम्।

यमुनाजी को कहा, 'तपनतनया।' सूर्य की बेटी कहना है उसको लेकिन शब्द चुना है शंकराचार्य ने, 'तपनतनयां तापशमनीं'; हम इन महापुरुषों को थोड़ा चुक गये हैं! महाप्रभुजी वल्लभाचार्य भगवान ने यमुनाष्टक गाया। उसकी बृहद् और अद्भुत व्याख्यायें की है आचार्यों ने। लेकिन जागरूक शंकर को भी समझना पड़ेगा कि तुम्हारी दृष्टि में क्या है यमुना? अपने-अपने ढंग से दो अष्टक लिखे हैं शंकराचार्य ने। मैं रुक गया पहले ही मंत्र पर 'तपनतनयां तापशमनीं'; हे तपनतनया, हे सूर्यकन्या, और सूर्य की कन्या होने के बाद तुझमें तपन होनी चाहिए, लेकिन तू 'तापशमनीं' है। 'मुरारिप्रेयस्कां' शंकराचार्य कहते हैं, तू मुरारि की प्रिया है। तू उसकी प्रेमिका है। भगवान वल्लभाचार्य महाराणी कहते हैं उसको। महाराणी का पद है उसका अष्ट पटराणियों में। लेकिन जगद्गुरु कहते हैं, मुरारि की तू प्रेमिका है। 'भवभयदवां।' संसार के जितने भय है उसके लिए यमुना, तू दावानल है। अब दावानल प्रकटे तो पानी बुझाये, लेकिन यहां यमुनाजी को शंकराचार्य दावानल कहते हैं कि हम जैसे संसारियों के जितने भय है उसको जलाने में तू दावानल है। 'भवभयदवां भक्तवरदाम्।' भक्तों को वरदान देनेवाली हे माँ, तू है। 'सदा धीरो नूनं।' जो लोग स्थिर है, ज्ञानी है, स्थितप्रज्ञ जैसे हैं ऐसे लोग तेरा भजन करते हैं। 'भजति यमुनां नित्यफलदाम्।' तू उसको रोज, नित्य फल देती है। ये केवल प्रलोभन नहीं है बाप! मुझे मूल आश्रय तो तुलसी का लेना है। तुलसी ने यमुना को किस संदर्भ में कहां-कहां याद किया है? कालिदास भी न चुके यमुना के वर्णन किये बिना। कौन चुकेगा? तो जितना स्मरण में आएगा, मैं आपके सामने 'मानस-जमुना' की चर्चा करूंगा।

'तेरी कृपा का कोई पार नहीं है।' जगद्गुरु शंकराचार्य यहां से शुरू करते हैं। श्रीमद् वल्लभ 'नमामि यमुनामहं...' वहीं से सीधे नमन करके आरंभ करते हैं। दोनों ने अपने-अपने अनुभव किये हैं यमुनाजी के। चौदह वर्ष की तरुण और सुंदर वय में श्रीमद् वल्लभाचार्य भगवान ने यमुनाजी में सोलह वर्ष की कन्या के रूप में श्री यमुनाजी का साक्षात् दर्शन किया। मुझे लगता है कि मेरे महर्षिगण बहुत समुदार है। ये बात मैं कई बार कह चुका हूं; फिर दोहराउं कुछ नई बातें जोड़कर कि गंगा में स्नान की महिमा है। इसका मतलब ये नहीं कि गंगा के पान की महिमा नहीं है। मैं गंगाजल ही पीता हूं, पूरी दुनिया जानती है। तो गंगा के स्नान की महिमा है इसका मतलब ये नहीं कि पान की, दर्शन की, स्पर्श की, पूजा की महिमा नहीं है। ऐसा अर्थ मत करना। यमुना में स्नान की महिमा है ही, क्यों न हो? दर्शन की स्पर्श की, पूजा की महिमा है। लेकिन यमुना के बारे में ज्यादातर मनीषियों ने कहा, यमुनापान करे। 'अकाल मृत्युहरणं सर्वव्याधि विनाशकम्।' यमुना के पान की महिमा है। तीन नदियों का संगम प्रयाग में होता है वहां तीसरी नदी जो लुप्त है, सरस्वती। उसमें भी स्नान, पान सबकी महिमा है। लेकिन गंगास्नान, यमुनापान और सरस्वती का गान। सरस्वती के तट पर गान हो। वेद का या कोई भी गान हो।

तुलसीजी लिखते हैं, सरजू के तट पर ध्यान की महिमा है। रेवा के तट पर लोग अनुष्ठान करते हैं, परिकम्मा करते हैं। क्रिष्णा के तट पर नर्तन की महिमा है। एक समय था, तीन सौ साल पहले ही साउथ में जो क्रिष्णा नदी बही है उसके किनारे पर बड़े-बड़े नृत्य के महोत्सव होते थे। क्रिष्णा के तट पर नर्तन की महिमा थी। क्योंकि नाम क्रिष्न से जुड़ा हुआ है। और वहां नर्तन होना स्वाभाविक है। ब्रह्मवाणी जिसमें संग्रहित है, ऐसे वेदों के पारायण की

महिमा हंमेशा ब्रह्मपुत्रा के तट पर रही है। गंडकी नदी जो है उसमें नारायण की महिमा मानी गई है। क्योंकि वहीं से शालीग्राम निकलते हैं। तो वहां नारायण की महिमा है। प्रत्येक नदियों के तट पर विशेष रूप में किसी न किसी बात की विशेष साधना की महिमा बताई गई। बाकी तो सबमें स्नान-पान आदि कर सकते हैं।

मैं आज ही कह रहा था। कहीं अच्छा तट हो, जायेंगे। फिर हनुमानजी शक्ति दे तो स्नान करेंगे। बाकी शास्त्रकारों ने कहा है, पान काफ़ी है! और जगद्गुरु शंकराचार्य ने भी यमुना पर अष्टक ही लिखा है। वल्लभाचार्य भगवान ने भी अष्टक ही लिखा है। सभी आचार्यों के मन में ये 'यमुनाष्टक' अष्टक ही आया। तो अष्टक की कुछ विशेष महिमा होनी चाहिए। अब 'यमुनाष्टक' लिखे तो तो बहुत-सी बातें तुरंत सबके दिमाग में आ जाएगी कि अष्टराणियां भगवान कृष्ण की, इनमें से एक महाराणी है यमुना इसीलिए अष्टक निर्णित कर लिया हो, हो सकता है। भगवान कृष्ण के अष्टछाप सखा है। वो भी आठ ही संख्या में है। इसी के आधार पर अष्टक निर्मित किया हो। कृष्ण का अवतार आठवां है दशावतार में इसीलिए भी अष्टक लिखा हो। और अष्टमी को प्रकट हुआ है ये भी तो एक कारण हो सकता है। और वैष्णवों में अष्टपदी की एक विशिष्ट महिमा है। गंगा बहुत धीर-गंभीर है, ध्यान देना। अब तो देश-काल बदला, मौसम बदलते रहते हैं, पर्यावरण का प्रश्न पूरी दुनिया में चल रहा है इसीलिए। बाकी गंगा धीर-गंभीर है साहब! लेकिन यमुना जरा नटखट रूपी है; कृष्णप्रिया है। उसमें वो लक्षण आयेंगे। वो बढ़ती हे, घटती है। गांभीर्य थोड़ा कम मिलेंगे आपको। और बढ़-घट उसमें ज्यादा दिखता है। और अष्टमी का अंक भी तो ऐसा है। हम जानते हैं कि उसमें चढाव-उतार आता है। ये नवमीं की तरह पूर्णांक तो रहता नहीं। वैष्णव परंपरा में, वल्लभी परंपरा में तो एक ही वो गाया गया लेकिन जिस रूप में गाया जाता है; मुझे बचपन से बहुत प्रिय है। बाकी ये अष्टक बहुत से राग में गाया जा सकता है। ये अद्भुत अष्टक है। कहीं ओर कम्पोजिशन भी होंगे, मुझे खबर नहीं लेकिन हम तो इसी रूप में ही गाते चले हैं-

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा।
मुरारि पदपंकज स्फूरदमंद रेणूत्कटाम्।।

इमरोज़ की दो पंक्ति है कि -

पाप जिस्म नहीं करता सोच करती है।
गंगा जिस्म साफ़ करती है सोच को नहीं।

पाप हमारा शरीर नहीं करता है, हमारी सोच हमारे विचार पाप करते हैं। शरीर निमित्त बन जाता है। यद्यपि इमरोज़ को कितनी खबर है मुझे खबर नहीं, गंगा सोच भी बदल सकती है। लेकिन यहां तो मैं यमुना को केन्द्र में रखकर बोलनेवाला हूं, इसीलिए एक वस्तु मैं भरोसे साथ कहता हूं, यमुना आदमी की सोच बदल देती है। यमुनाजी की ये ताकत है। इसीलिए मेरे तुलसी निरंतर बोलेंगे, 'कलिमल हरनी', 'कलिमल हरनी।' यमुनाजी को कलिमलहारी कहते हैं।

सबसे बड़ी पांच गांठ हमारे जीवन में जो है वो ये है। एक, मन ये हमारी बहुत बड़ी ग्रंथि है। मन के कारण हम इर्ष्या करते हैं; ये मन के कारण हम द्वेष करते हैं। मन के कारण हम निंदा करते हैं। ये मन के कारण किसी का अच्छा हम देख नहीं पाते हैं। ये मन के कारण किसी की सराहना हम सह नहीं सकते हैं। अब मैं क्या-क्या कहूं? हम सब इससे गुज़रते हैं! तो ये मन एक बहुत बड़ी गांठ है। केन्सर की गांठ अच्छी है कि कम से कम उसको निकाल पा सकती है, कुछ समय पेशन्ट ज्यादा जी सकता है। भगवान महावीर स्वामी जब पूर्णतः अरिहंत को उपलब्ध हो गये तब उसके लिए एक शब्द जैन परंपरा में आया कि महावीर स्वामी 'निर्ग्रंथ' हो गये। निर्ग्रंथ यानी किताबमुक्त हो गये ऐसा नहीं, उसके बाद तो उसने कई किताबें कही। निर्ग्रंथ का मतलब ग्रंथ छूट गया नहीं, ग्रंथियां छूट गई। इसीलिए भगवान महावीर स्वामी के लिए बहुत बड़ा प्यारा शब्द प्रचलित रहा कि महावीर निर्ग्रंथ हो गये। मुझे बहुत प्रिय शब्द है 'निर्ग्रंथ।'

तो मन एक बहुत बड़ी गांठ है साहब! कोई प्रवाह एक गांठ का निवारण करती है, कोई प्रवाह दो का निवारण करती है। आप ये जरा भी मत सोचियेगा कि मैं यहां यमुना पर बोलने बैठा हूं इसीलिए यमुना को बढ़ा-चढ़ा कर बोलूं! यमुना, मैं कृष्णउपासक हूं, इसलिए मेरे साथ जुड़ी हुई है। हम निम्बार्की है, कृष्णपरंपरा के है। जो पवित्र से पवित्र जल जहां बहता हो उसको जल नहीं कहते, तीर्थ कहते हैं। और जो बहुत पवित्र से पवित्र जमीन होती है उसको जमीन नहीं कहते, क्षेत्र कहते हैं। लेकिन बहुत

पवित्र जमीन और बहुत पवित्र जल दोनों मिलते हैं, वहां तीर्थक्षेत्र कहते हैं। जमुना तीर्थक्षेत्र है। इसीलिए यमुना की बहुत बड़ी महिमा है। और ये मन हमें बहुत कर्म करवाता है। इसीलिए तुलसी ने ही कहा है, 'कर्मकथा रबिनंदिनि बंदिनि', यमुना ये कर्मकथा है। 'रामचरित मानस' में नदियों के साथ कथा को जुड़ा गया है। इनमें कर्म की कथा जो है उसमें तुलसी यमुना का नाम जोड़ते हैं। तो मन बहुत बड़ी गांठ है।

आज ही मैं ऐसे बैठा था तो सोच रहा था; मेरे पास एक धागा पड़ा था गरम साल का। तो मैंने इस धागे में गांठ मारी। फिर मैं सोचने लगा कि ये धागा और गांठ दो है कि एक है? केवल रूप बदलता है और केवल नाम बदलता

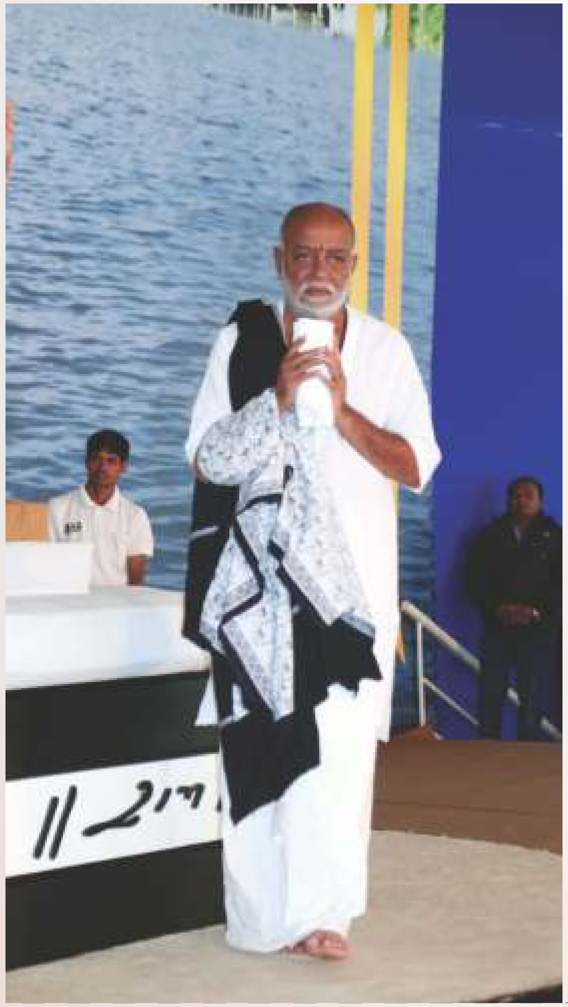

है। दोरी थी; अब ग्रंथि आ गई और विशेष प्रकार का एक रूप बन गया। लेकिन मैं सोच रहा था, आप भी सोचिए मेरे भाई-बहन कि गांठ के लिए रस्सी जरूरी ही है। रस्सी के लिए गांठ जरूरी नहीं है। रस्सी के बिना गांठ हुई ऐसा कभी हो सकता है? असंभव। जैसे समुद्र और तरंग की बात जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं तब कहते हैं कि लहर के बिना समुद्र हो सकता है, लेकिन समुद्र बिना लहर नहीं हो सकती। ये सीधी-सी बात है। तो ये जो गांठ पड़ती है इससे कोई वजन नहीं बदलता है, लेकिन रूप बदलता है। ये ग्रंथियां जो है साहब, इसमें पहली गांठ मन है। हमें खबर नहीं कितनी वस्तु में ये मन उलझा रहा है! उपनिषद तो पांच-पांच ग्रंथियों की पूरी शृंखला दिखाते हैं। मन ये पहली गांठ है।

दूसरी गांठ हमारी इच्छायें है। तीसरी गांठ है हमारा स्वयं का प्राण। उसको ग्रंथि कहा है। चौथी गांठ है सत्त्व। सत्त्व अच्छा गुण माना जाता है, लेकिन वो भी गांठ है। और हैरान हो जाते हैं उपनिषद को देखते है तब! पांचवीं गांठ है पुन्य। पुन्य भी एक गांठ है तत्त्वतः। इसीलिए तो मेरे जगद्गुरु बोले होंगे -

'न पुन्यं न पापं, न सुखं न दुःखं ...'

'पुन्यंपापहरं सदा शिवकरं...' क्या 'मानस' में गांठ तोड़ दी है! तो बाप! ये पांचों गांठों को यदि साधना की एक ही धारा से समाप्त करनी है वो धारा यमुना है। और करीब-करीब हम सब पाचों गांठों से आबद्ध है। अपने जीवन की रेशमी रस्सी को कुरूप किये बैठे हैं ग्रंथियों के कारण!

तो मेरे भाई-बहन, यमुनाजी हमारी साधना के लिए, आगे की जिंदगी की प्रसन्नता के लिए मुझे लगता है कि बहुत हमें वरदान दे सकती है। मैं कोई संप्रदाय में बंधनेवाला आदमी नहीं हूं। मेरी बातें सार्वभौम होगी। क्योंकि मैं समझता हूं कि संकीर्णता आने लगती है तब कितने अद्भुत प्रवाह को हम संकीर्ण कर देते हैं! बिलकुल खुल्ले चित्त से हम और आप श्रीमन् भगवन् महाप्रभुजी भगवान वल्लभाचार्य ने जो बात कही है, जगद्गुरु शंकराचार्य ने और मनीषियों ने और लोककवियों ने भी जो-जो बातें यमुना के बारे में कही है, तो 'मानस-जमुना' बोलते-बोलते स्नान करेंगे। सुनते-सुनते पान करेंगे। बीच-बीच में नींद आ जाये तो ध्यान करेंगे! अनुष्ठान, ध्यान वो सब इसमें आ जाएगा!

तो नव दिन के लिए प्रभु ने कृपा की है कि यमुनाजी की गोद में बैठकर के हम भगवद्चर्चा करेंगे। जो दो पंक्तियां मैंने पसंद की है, एक 'बालकांड' की पंक्ति है और एक 'लंकाकांड' की पंक्ति है। पहली बार 'बालकांड' में तुलसी 'जमुना' बोले हैं और 'मानस' में आखिरी में 'जमुना' बोले; वो पंक्ति मैंने उठाई है।

कोई आदमी किसी के घर जाय डाका डालने और सफल न हो सके और उसके मुख पर कोई काली मेश निपट दे और दुनिया में सबको पता लगे कि गया था कुछ ओर इरादा लेकर लेकिन मुख काला करके लौटा। जिसके घर यमराज के दूत आते हैं न, माँ यमुना का स्मरण हो जाये तो यमुना कृपा करके यमराज के दूत का मुंह काला करके धक्का देती है कि मैं हूं, तू कौन आनेवाला? मृत्यु तो अनिवार्य है लेकिन निर्णय मैं करूंगी। तुलसी कहते हैं, जमगणों के मुख पर कालिमा पोतनेवाली जमुना की तरह ये रामकथा है। तुलसी का यहां से उद्घाटन शुरू होता है।

तो श्री यमुने महाराणी को केन्द्र में रखते हुए तुलसीदासजी ने जमुनाजी का दर्शन किस-किस रूप में किया, वो इसके पीछे क्या संकेत करना चाहते हैं और कहां कौन मनीषी इसके साथ संमत है, कौन आचार्य इस बात से प्रसन्न है, ये सब बातें हम और आप मिलकर करते रहेंगे। केवल प्रसन्न चित्त और प्रशांत चित्त से कथा का श्रवण करे। तुलसी ने अपने साहित्य में जहां-जहां यमुनाजी का संकेत दिया है उसका भी संदर्भ लेंगे ताकि यमुनाजी का हम विशाल दृष्टिकोण से दर्शन कर सके; थोड़ा आत्मसात् हम कर सके।

तो 'मानस-जमुना' इस कथा का विषय रहेगा। औपचारिकता निभानी होती है; पहले दिन कथा का माहात्म्य गाना पड़ता है। गोस्वामीजी ने 'रामचरित मानस' की रचना की और 'रामायण' क्या है वो बताने में जिस-जिस आधार लिया है उसमें जमुनाजी का भी आधार जो पंक्ति में लिया है वो ये है 'जम गन मुहँ मसि जग जमुना सी।' तो रामकथा को तुलसी ने यमुना कह दिया। और जमुनाजी के जितने लक्षण है मुझे अवसर आते-आते कहना है, ये 'रामायण' के सब लक्षण है। ये ('मानस') यमुना है; ये मेरी यमुना है; हमारे लिए तो ये यमुना है।

मंगल करनी कलिमल हरनी तुलसी कथा रघुनाथ की।

तो यमुनाजी के करीब-करीब सोलह लक्षण; यद्यपि 'अनंत गुण भूषित' श्रीमन् महाप्रभुजी कहते हैं। लेकिन सोलह लक्षण जो यमुनाजी के है ये 'रामचरित मानस' के है। तो यमुनाजी का ये साक्षात् स्वरूप 'रामचरित मानस'; और पक्की बात है साहब कि ये जमुना का जो आश्रय करेंगे उसके घर से यमराज के दूत मेश लगाकर बाहर निकलेंगे! कहेंगे, हम गये थे लेकिन वहां तो जीवन धन्य हो गया है! हम उसको कुछ कर न पाये! ऐसी रामकथा जो कलिमल को हरती है, मंगल ही मंगल प्रदान करती है। ऐसी रामकथा को तुलसी ने कभी सरजू कही। सरिता के साथ कथा को बहुत जोड़ा। इमरोज़ की दो-तीन पंक्ति ओर मुझे याद आती है -

कविता तू यदि कविता रहेगी
तो तेरे साथ मीरां रहेगी,
तेरे साथ राधा रहेगी,
तेरे साथ कृष्ण रहेगा।
कविता अगर तू अकेली हो गई
तो तेरे साथ न कृष्ण होगा,
न राधा होगी, न मीरां होगी।

एक प्रवाह जब होता है, फिर ये कविता का प्रवाह हो या सरिता का प्रवाह हो। इस बार तो यमुना के रूप में ही इसका हम दर्शन करेंगे।

तो सात सोपान की ये कथा, सात मंत्रों में आरंभ जिसका होता है। पंचदेव की शांकरी परंपरा का पांच सोरठे में डालकर एक सेतुबंध की चर्चा गोस्वामीजी ने कर दी है। गणेश, सूर्य भगवान, शिव, दुर्गा, विष्णु भगवान पंचदेवों की स्मृति की तुलसी ने। ये पंचविचार है कि व्यक्ति के जीवन में विनय, विश्वास, श्रद्धा, विशालता और प्रकाश ये पंच विचार है। गणेश मानी विनय। सूर्य मानी प्रकाश। शिव मानी विश्वास और दुर्गा मानी श्रद्धा। विष्णु मानी विशालता। ये पंचदेव है। लेकिन तुलसीदासजी इस विचार की स्थापना करते हुए गुरुवंदना से शास्त्र का आरंभ करते हैं। एक पूर्णतः गुरु का आश्रय ये पंचदेवों की पूजा भी हो जाती है, क्योंकि गुरु ही गौरी है, गुरु ही शिव है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही सूर्य है, गुरु ही गजानन है। तो पांचों विचार गुरु में प्रतिष्ठित होते हैं। अनंत विचार होते हैं लेकिन पांच प्रधान होते हैं।

तो पहला प्रकरण गुरुवंदना का। गुरु के बाद तुरंत ब्राह्मण की वंदना; गुरु की कृपा से दृष्टि पावन करके पृथ्वी के देवताओं की वंदना की। बहुत बड़ी ऊंचाई का नाम है ब्राह्मण; वर्ण की बात नहीं है। फिर सज्जनों की वंदना की। और फिर तुलसी ने साधु समाज की वंदना की। साधु के समाज को तीर्थराज प्रयाग कह दिया कि ये चलता-फिरता प्रयाग है जहां भक्तिरूपी गंगा, कर्म की यमुना, ब्रह्मरूपी विचार की सरस्वती निवास करती है। तो साधुसमाज की बड़ी महिमा गोस्वामीजी ने गाई। साधुओं का दर्शन करता हूं, सोचता हूं तो नई-नई सोच आती है, लेकिन जैसे समझ में आता है तो 'रामचरित मानस' में भगवान शिव को साधु कहा है। और शिवजी का वानररूप हनुमान है। तो हनुमान भी साधु है। और शिव से भी तो ऊंचा साधु बन गया ये!

साधु संत के तुम्ह रखवारे।
असुर निकंदन राम दुलारे।

भरतजी को भी साधु कहा है; राम को भी साधु कहा है; कौशल्या को भी साधु कहा है; विभीषण को भी साधु कहा है। साधु, साधु। पूरा मेला है। पूरा कुंभ है।

तो मेरे युवान भाई-बहन, साधु का एक परिचय; जिसका पांच मुख हो उसको साधु समझना। क्योंकि शंकर को पांच मुख है। और हनुमानजी को भी अमुक पौराणिक गाथाओं में पंचमुख बताया गया है। जब साधुसमाज की वंदना चल रही है तब मुझे कहना है कि हम और आप उसको साधु माने, दिल से समझे जिसके पांच मुख हो। साधु कभी दसमुख नहीं होता, साधु पंचमुख होता है। पंचमुख एक विचार के रूप ले। कोई पंचमुखी साधु मिल जाये तो कितनी किंमत पर उसको छोड़ना मत। ऐसा कोई गुरु मिल जाये, ऐसा कोई साधु मिल जाये।

साधु का पहला मुख है गुरुमुख। तथाकथित गुरु साधु हो ही ऐसा निर्णय नहीं हो सकता। लेकिन साधु होगा वो गुरुमुखी होगा ही, ये पक्की बात है। दूसरा, साधु वेदमुखी होता है। वो बोलेगा ये वेद ही बोलेगा। वेद का अर्थ है जानना। जो जान चुका है, जिन्होंने जान लिया है। साधु का दूसरा मुख मेरी व्यासपीठ के मुताबिक वेदमुख होता है। छोटे-छोटे भजनों में भी वेद की बात अथवा तो वेद न कह सका ऐसी बातें साधुओं ने खोली है और प्रस्थापना की है। 'भज ले राम।' साधु बोले, वेद नहीं तो क्या है? सीधा वेद ही उतरा है। 'रामचरित मानस' में चारों वेद राम की स्तुति करने आये तब क्या-क्या बोल गये! 'भज ले राम' में सब वेद आ जाता है। तीसरा मुख साधु का होता है सन्मुख। साधु सबके सन्मुख होता है, किसी के विमुख नहीं होता। आप सच्चे साधु को ये नहीं कह सकोगे कि ये हमारा विरोधी है। असंभव। सच्चे साधु को कोई दुश्मन नहीं होता, मित्र भी नहीं होता। साधु, साधु होता है।

साधु का एक चौथा मुख है जिसको मौनमुख कहा जाय अथवा तो यूं कहो अंतर्मुख; साधु बहिर्मुख नहीं होता, क्योंकि साधु को पता है कि बहिर् तरंगे है। मूल वस्तु भीतर है। बाहर जो अंदर तीन है इसका विस्तार मात्र है। इसीलिए साधु का एक मुख है अंतर्मुख; बिलकुल मौनमुख। और जिसको भजन में रुचि है, जिसको साधना में रुचि है, जहां तक संभव हो, महिने में एक बार, सप्ताह में एक बार, जब-जब अनुकूल पड़े, मौन रखे। बड़ी एनर्जी इकट्ठी होती है मौन से। जीभ को व्यभिचारिणी मत बनाओ। साधु के पास पांच मुख-गुरुमुख, वेदमुख, सन्मुख, अंतर्मुख अथवा तो मौनमुख और पांचवां गोमुख। साधु गाय से भी गरीब होता है, ये शेरमुख नहीं होता है। ये पांच जो मेरी नज़र में साधु की परिभाषा है। और साधु हसमुख होता है; प्रसन्न होता है। ये 'हसमुख' तो मैंने ऐसे 'मुख' शब्द आया तो लगा दिया! और लक्षण भी माना जाय। यस। क्यों न माना जाय? साधु हंसता हो। तिबेटियनों ने बुद्ध भगवान को भी लाफिंग बुद्धा कह दिया। तो ऐसा बुद्ध देखा होगा मीरां ने रैदास में; देखे होंगे कमाल ने कबीर में पांच मुख! देखे पांच मुख गरुड ने भुशुंडि में। देखा पार्वती ने शिव में। तो कोई पंचमुख साधु मिल जाये। इसके लिए मीरां गाती है -

साहेली अमने भागे रे मळ्यो साधुपुरुषनो संग,
साधु रे पुरुषनो संगडो ज करीए हरि,
तो तो चढी जाय भगतिनो रंग...

'मानस' के आप श्रोता है, 'मानस' आपको प्रिय है तो इतना जरूर ध्यान रखियेगा-

साधु अवग्या तुरत भवानी।
कर कल्यान अखिल के हानी।

साधु की अवज्ञा न हो हम सबसे। साधु की अवज्ञा का मतलब क्या? साधु को आप धक्का दे दो तो ये अवज्ञा हो गई? ये तो भौतिक अवज्ञा है। स्थूल अवज्ञा है। बाप! निभाना बहुत कठिन है! पहला, किसी साधु के पास असत्य बोलना अवज्ञा है। अब कभी-कभी क्या होता है कि कारण न हो तो भी लोग असत्य बोलते हैं! इसका मतलब मैं ये छूट नहीं देता और मैं खुद भी ये छूट न ले लूं कि कारण हो तो असत्य बोले। ऐसा नहीं, सत्य तो सत्य है। लेकिन साधु के सामने असत्य ये अवज्ञा है। ये साधु की नहीं, सत् की अवज्ञा है। और साधु को हम सद्पुरुष कहते हैं। सद् मानी सत्य। ध्यान रखे बस, हम और आप। मेरी बातें आपको क्या सुनाउं? और कभी-कभी गलत अर्थ भी हो सकता है! लेकिन आप मेरे हैं तो कहता हूं। मैं छोटा रहा तो कभी-कभी स्कूल जाने की इच्छा न हो तो मैं कह देता था कि मैंने लेशन नहीं किया है। ये बहाना था मेरा। मूल स्कूल जाना नहीं था! तो माँ कह देती कि ठीक है, कोई बात नहीं। वो जैसे छूट दे फिर तुरंत मैं कह देता था, होमवर्क का बहाना है, लेकिन जाना नहीं! तो कहे, ठीक है जा! छुटकारा जल्दी प्राप्त कर लेता था ऐसे! लेकिन मैंने दादा के सामने कभी सतवचन नहीं छोड़ा। ये पघडी की अवज्ञा यदि हो गई होती तो मैं आज यहां नहीं होता! गुरु की अवज्ञा न हो जाय। सावधान रहे। क्योंकि साधु भोला होता है। याद रखना, साधु को छेतरना बहुत आसान है। वो आप जो भी कहोगे, मान लेगा! यदि गुरु निष्ठा है, यदि किसी साधु में प्रीति है, गुरुविद्या तभी सफल होती है कि गुरु के सामने हमारा वचन झूठा न हो।

दूसरी साधु की अवज्ञा वो है कि वो जो साधु बोले, गुरु बोले, बुद्धपुरुष बोले उसके वचन की हम अवहेलना कर दे, ये अवज्ञा है। डरना नहीं, क्योंकि प्रलोभनवाली बातें और डराने की बातें मैं कभी करता ही नहीं, लेकिन अब मैं थोड़ा कहता हूं कि हम पाते-पाते चुक न जाये! हम जो जीवन का परमविश्राम पाने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं इसमें से कहीं हम चुक न जाये इसलिए। लेकिन डरने की कोई जरूरत नहीं। भुशुंडि ने महाकाल के मंदिर में जो अपने गुरु का अपराध किया वो कोई अपराध था? लेकिन कुपित हुआ महादेव, गुरु नहीं कुपित हुआ है। वकालत की अपने आश्रित की। और तीसरी बात, हमारे जैसे जीवों के लिए गुरु अपना सबकुछ लूटा दे फिर भी हम अन्याश्रय करे ये बड़ी अवज्ञा है। उसको तो कोई बुरा नहीं लगेगा। तो ये त्रिपथी अवज्ञा मानी गई तुलसीदर्शन में।

तो पूरा अद्भुत प्रकरण, साधुता का प्रकरण गोस्वामीजी ने लिखा। साधुओं की वंदना की। फिर सबकी वंदना की और आखिर में-

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।
प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

तो श्री हनुमानजी महाराज की वंदना गोस्वामीजी ने की। जिसको मैं नितांत अनिवार्य मानता हूं साधक के लिए। चाहे किसी भी मारग का वो पक्षी हो, हनुमंतवंदना नितांत आवश्यक है, ग्रंथिमुक्त होकर देखे तो। तो बाप! श्री हनुमंतजी का आश्रय नितांत जरूरी है। हनुमानजी परम साधु है। उसको भी पांच मुख है। 'वाल्मीकि रामायण' में भगवान राम स्वयं कुबूल कर रहे हैं कि ऐसा वेद के जाननेवाला मैंने पहले कभी सुना नहीं है। इसीलिए उसका वेदमुख है।

जय जय जय हनुमान गोसाई।
कृपा करहुं गुरुदेव की नाई।।

ये गुरुमुख है। श्री हनुमानजी अंतर्मुख है, मौनमुख है। श्री हनुमानजी पंचमुख है। उसकी वंदना, उसका आश्रय बहुत आवश्यक है।

साधु की अवज्ञा न हो हम सबसे। साधु की अवज्ञा का मतलब क्या? साधु को आप धक्का दे दो तो ये अवज्ञा हो गई? ये तो भौतिक अवज्ञा है; स्थूल अवज्ञा है। किसी साधु के पास असत्य बोलना अवज्ञा है। ये साधु की नहीं, सत् की अवज्ञा है। और साधु को हम सद्पुरुष कहते हैं। सद् मानी सत्य। दूसरी साधु की अवज्ञा वो है कि जो साधु बोले, गुरु बोले, बुद्धपुरुष बोले उसके वचन की हम अवहेलना कर दे। और तीसरी बात, हमारे जैसे जीवों के लिए गुरु अपना सबकुछ लूटा दे फिर भी हम अन्याश्रय करे ये बड़ी अवज्ञा है।

'मानस' की कथा यमुना बनकर एषणा से मुक्त कर देती है

'मानस-जमुना' की कल जो कुछ बातें हुई पहले दिन उसी के संदर्भ में बहुत-सी जिज्ञासायें है। यथावकाश, यथामति, यथागुरुकृपा मैं आपसे बातें करूंगा। पहले थोड़ा ये समझ लीजिए, कल भी एक प्रश्न था कि यमुनाजी की उत्पत्ति कैसे हुई? दो-तीन प्रकार की कथायें है। साधना में मेरी समझ में चरण और नयन दोनों की बहुत महिमा है। आश्रित के लिए चरण की महिमा है, बुद्धपुरुष के लिए नयन की महिमा है। और हम सबका सद्भाग्य है कि हमारे यहां दो नदियां गंगा और यमुना उसको हम जरा विशेष दृष्टि से देखते हैं। बाकी सब नदियां पावन है। और दोनों में दो साधना संकेत छिपे हैं। गंगाजी का प्रागट्य भगवान के चरण से हुआ है। यमुनाजी का प्राकट्य भगवान की आंखों से है। भगवान के नेत्रों से यमुनाजी प्रकटी है। कथा ऐसी है कि सुरासर संघर्ष के बाद भगवान नारायण जरा श्रमित है। और जैसे हम विश्राम में सीधे लेट न जाये, लेकिन विश्राम की मुद्रा में लेटे हो ऐसे भगवान लेटे हैं। थोड़े श्रमित है। जब कोई भी परमतत्त्व देह धारण करता है तो देह के धर्म उसको लागू हो ही जाते हैं। इसीलिए श्रम का होना, नींद का आना, जागना, स्वप्न; यद्यपि परमतत्त्व को ये लागू नहीं होते हैं देहधारण करने के बाद भी। फिर भी वो अपने देह पर आरोपित करते हैं। भूख लगना, तरस लगना, हर्ष होना, शोक होना, ये सब द्वन्द्व देहधारिओं को लागू होता है।

तो भगवान थोड़े विश्राम में थे और आंखें थोड़ी मुंदी हुई है। अचानक आंख खोलते हैं और उनकी दोनों आंखों से एक-एक अश्रुबिंदु निकलते हैं। और वो आंसू गिरे धरती पर। और एक बहुत बड़ी तपस्विनी कलिन्द पर्वत की तलेटी में तपस्या करती थी। और उसने ये आंसू को ग्रहण किये। कश्यप और अदिति के पुत्र सूर्य; तो वो अश्रु को धारण कर लेते हैं। और पूछा गया कि ये अश्रु जो मैंने धारण किए हैं उससे क्या होगा? फिर कहते हैं कि कश्यप और अदिति के पुत्र भगवान सूर्य, तेरी और उनकी भेंट होगी और इस भेंट के कारण एक पुत्री और दो पुत्रों का जन्म होगा। उसमें जो पुत्री का जन्म हुआ वो है श्री जमुनाजी। एक प्रागट्य कथा ये जमुना की। पुत्र यमराज, धर्मराज भी कहते हैं। उसको कलिन्दनंदिनी भी कहते हैं। ये कलिन्द पहाड़ से निकली है। एक कथा ऐसी भी है कि वो जो देवी तपस्या करती है ये घोडी के रूप में घूमती रहती है इस प्रदेश में। और उसका स्वीकार करने के लिए घोडे के रूप में सूर्य आते हैं। मूल में कई कथा पड़ी हुई है।

श्रीमन् वल्लभाचार्यजी भगवान को यमुनाजी का दर्शन जब वो दामोदरदासजी को लेकर यात्रा में थे, चौदह साल की उम्र है तब हुआ। चौदह साल की तरुण अवस्था है वल्लभाचार्य भगवान की। बहुत सुंदर है वल्लभाचार्य भगवान; अति सुंदर है। और उसके कुछ भक्तगण, वैष्णव साथ में है। और महाप्रभुजी पूछते हैं, दमला! अपने को गोविंदघाट कौन बतायेगा? अपने को ठकुरानीघाट कौन बतायेगा? दमला कहते थे प्रिय उच्चारण में। कोई गुरु आपको ऐसे प्रिय नाम से बुलाये तब समझना मुठ्ठी में मौत आ गई! मोक्ष मरने के बाद नहीं होता। और फिर जब वो चौदह साल के महाप्रभुजी दर्शन करते हैं उसी समय सुंदर यौवन श्री महाराणीजी का उसको साक्षात् दर्शन हुआ है। भगवान वल्लभाचार्य का जो मुख है वो परमात्मा का मुख ही माना जाता है। इसीलिए वो जो भी बोलते हैं उसको वैष्णव ही क्या सबको मानना चाहिए। वो वेदवाणी ही मानी जाती है। और यमुनाजी का दर्शन वहीं किया और उसीके मुख से स्तोत्र निकल पड़ा उसीका नाम है 'यमुनाष्टक।' 'नमामि यमुनामहं...' कहकर वो गाने लगते हैं। ये स्वाभाविक है, जरा बुद्धिगम्य न भी लगे। लेकिन शीघ्र कविता कई महापुरुषों को फूटने लगती है। कोई विशेष शक्ति आदमी में होती है। तो महाप्रभुजी जब बोलने लगे तत्क्षण ये कोई आश्चर्य की बात नहीं। वो 'यमुनाष्टक' का गायन करने लगे।

नमामि यमुनामहं सकल सिद्धिहेतुं मुदा।

तो, महाप्रभुजी के लिए यमुनाजी का प्राकट्य इस रूप में बताया है। कहा तो ये भी जाता है कि महाप्रभुजी के साथ जो-जो वैष्णव थे उसको भी दर्शन हुआ। हो सकता है। गुरु के साथ समर्पित शिष्य गुरु की आंखों से देख लेता है। उसने देख लिया होगा।

एक कथा तो ऐसी भी है कि गोलोकधाम में श्री राधाजी, श्री यमुनाजी परमात्मा की दोनों प्रिया नित्य संग में रहती है। एक बार भगवान उदास थे। दोनों ने भगवान को कहा कि प्रभु, आप उदास क्यों है? बोले, पृथ्वी पर जीव बहुत परेशान है। मुझे इसकी पीड़ा है। तो फिर क्या करे? कहा कि पृथ्वी पर हम जाये। और फिर रसरूप जो यमुना महाराणी है वो भी उसके साथ धरती पर पधारती है। एक कथा ऐसी भी प्राप्य है। फिर तो जिसका जैसा भाव ऐसी कथा जोड़ी भी जा सकती है। और जिस समय में जो व्यक्ति श्रद्धेय होगी उसकी बात सच भी मानी जाती है। आज मैं कुछ अपने ढंग से जोड़ दूं तो हो सकता है सौ साल के बाद लोग उसको प्रमाण भी मान ले कि बापू ने कहा था तो प्रमाण। लेकिन उसी समय कोई शास्त्र अपराध न हो जाये उसका बहुत ध्यान रखना होता है।

तो बाप! इस तरह धराधाम पर जिसको हम व्रज कहते हैं, ये व्रज केवल ये पृथ्वी का भाग नहीं है, वो उपर से आया टुकड़ा है। गोपीजनों को पता था इसीलिए वो गाती है -

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ।।

एक मत तो ऐसा भी है कि ये जो सूर्य है उसकी तो ये तनया है ही। लेकिन जो सूर्यों का भी सूर्य है, वो जो आदि सूर्य नारायण है उसकी भी पुत्री मानी गई है। तो ये 'रवितनया' है। जगद्गुरु आदि शंकर तो उसको कहते हैं, 'विहाररासखेदभेदधीरतीरमारुता'; शब्द सुनिए, आचार्यो ने किस रूप में यमुना का दर्शन किया है? धन्य है जगद्गुरु आदि शंकर, उसने यमुना दर्शन को संकीर्ण न किया, सार्वभौम कर दिया। कभी-कभी हम उसको संकीर्ण कर देते हैं! नहीं, नहीं, श्रीमन् महाप्रभुजी वल्लभाचार्य की यमुना सार्वभौम है। कालांतर में उसको संकीर्ण कर दे ये हमारी मानसिकता की बात है। जगद्गुरु शंकर की तो पहले से सार्वभौम यमुना है।

विहाररासखेदभेदधीरतीरमारुता।

किसी ने की है यमुनाजी की ऐसी महिमा? यमुना के तट पर जब गोपीजनों के साथ कृष्ण का विहार हुआ और रास हुआ ये दोनों में से जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं, खेद प्रकट हुआ। और जगत में कहीं भी विहार होगा, कहीं भी रास होगा उसमें खेद आयेगा ही। कोई विहार खेदमुक्त नहीं होता है। यमुना तट विहार करने के लिए कृष्ण ने गोपीजन निमंत्रित की। गोपीजनों को हुआ कि हमको सामने से निमंत्रित किया! हमारे बिना वो अकेला है! गोपीजन को सौभगमद पैदा हुआ। ये है विहार का खेद। और रास का खेद है, कभी न कभी रास पूरा हो जाएगा। विश्व में तो अनंत रास चल रहा है ये बात ओर है। लेकिन कोई भी प्रोग्राम शुरू होता है तो खत्म होगा ही। किसी भी समारंभ समापन की ओर गति करता है। और वो महारास का खेद है। जैसे कि नव दिन की कथा ये हमारा महारास है और नववें दिन हमें भी थोड़ा खेद नहीं होता कि कथा पूरी हो गई! क्या कहते हैं आदि शंकर? हे यमुनाजी! तुम्हारे तट पर जो रास और विहार हुआ था उसमें जो खेद प्रकट हुआ था उसको मिटाने में तेरे प्रवाह पर से जो मरुत, जो हवा चलती है वो हवा इस खेद को नष्ट करती है।

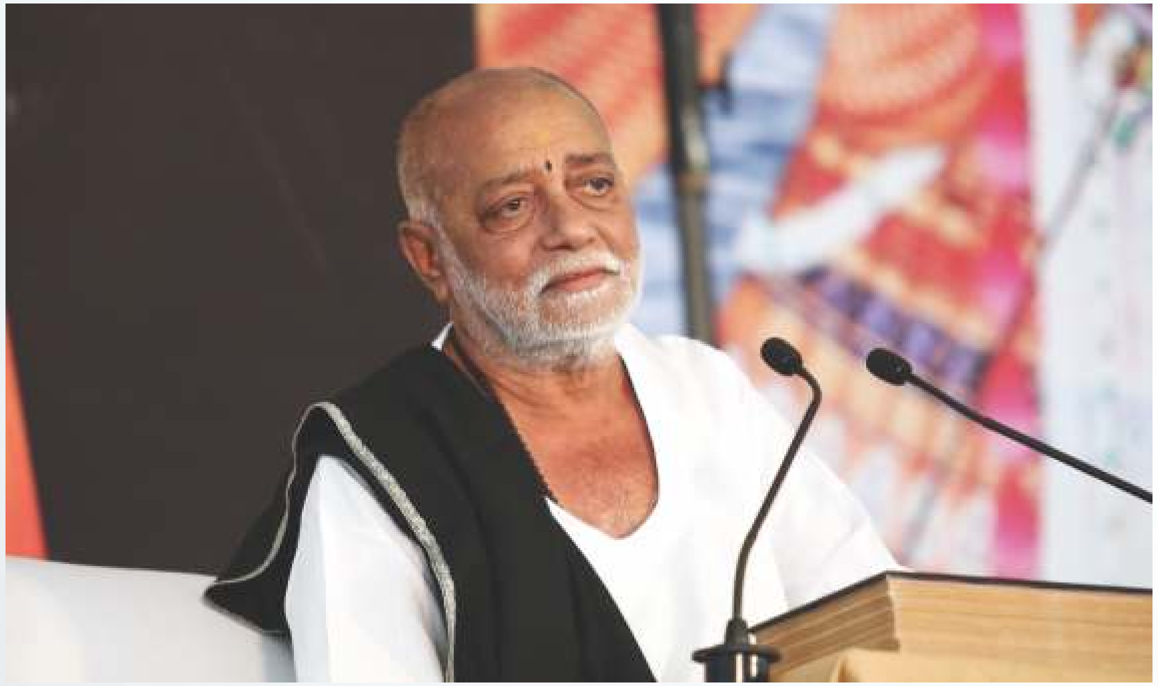

धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा।

हे माँ! हे कलिन्द की पुत्री! तू मुझे पवित्र कर। मेरे मनोमलों को तू धोती है। तेरी हवा चलती है तो जीवन के समस्त खेद पूरे हो जाते हैं।

तो परमात्मा के नेत्र की कृपा की देन है ये यमुनाजी। परमात्मा के चरण कृपा की देन है श्री गंगाजी। ये दो परमपावन तीर्थ जो है ये एक चरण से निकली है, एक नयन से निकली है। और भगवान के चरण से निकली गंगा गौर है। क्योंकि भगवान के चरण के नीचे का तलवा गौर है। वैसे विष्णु श्याम है, लेकिन नीचे का तले का भाग बहुत गौर है। और उसको ब्रह्माजी ने नीचे से धोया है और भगवान के पैर के तलवे को छूकर गंगा प्रकटी तो गौर हुई। और मुझे लगता है, आंख का रंग ही श्याम है साहब! मुल्कभेद से चमडी के अंगों के वर्ण बिलग-बिलग होते हैं, लेकिन आंख का मूल रंग तो श्याम ही है। उसका गोलक जो है वो श्याम है। उसीसे निकली यमुनाजी श्यामसुंदर की करुणा है तो इसीलिए यमुनाजी श्यामवर्ण हुई।

मैं यमुनोत्री का अक्षरब्रह्म कहना चाहता हूं। फिर मेरा अक्षरब्रह्म का कोई गलत अर्थ न पकड़ ले प्लीज़! अक्षरब्रह्म जहां होता है उसमें चार वस्तु होती है। एक वर्ण। वर्ण मानी अक्षर। फिर वर्ण का एक देवता होता है; अक्षर का एक देवता होता है। फिर इस देवता की एक शक्ति होती है। और चौथा, शक्ति का अपना कार्य होता है। वर्ण, देव, शक्ति और कार्य। 'यमनोत्री' में पहला वर्ण 'य' है। 'य' वर्ण है, उसका देवता है यम। और यम की शक्ति का नाम है काल। काल का कार्य क्या है? कालरूपी शक्ति का कार्य क्या? मैं आपसे पूछुं तो आप कहेंगे, काल तो मारता है। ये भ्रांति है। काल के कार्य तीन है। एक, मृत्यु के भय से मुक्त करना काल का कार्य है। हमको डरा दिया है, मृत्यु काल है! काल का कार्यक्षेत्र है मृत्युभय से मुक्ति। एक बार काल आ जाता है और आदमी मर गया, उसको मृत्यु का भय रहता है? मेरे भाई-बहन, कालरूपी शक्ति का कार्य समझ में आ जाये तो हम सबका मृत्यु का भय मिट जाये। आदमी काल से नहीं मरता, डर से मरता है। मृत्यु का भय यमुना छुड़ाएगी। रक्षा बांधी है यमराज को यमुनाजी ने और जब भाई ने कहा बहन, तूने रक्षा बांधी है, मैं क्या दूं? तब कहा कि मेरा कोई पान करे, मेरा कोई स्तोत्रगान करे, मेरे तट पर निवास करे, खाली 'यमुना यमुना' बोले, उसका मृत्यु का भय मिट जाना चाहिए। इसीलिए मेरे तुलसी 'मानस' को भी जमुना कहकर कहते हैं-

जम गन मुहँ मसि जग जमुना सी।
जीवन मुकुति हेतु जनु कासी।।

तो कालरूपी शक्ति का कार्य तीन बताया है। एक तो मृत्युभय से मुक्ति। दूसरा, निरंतर जागरूकता। काल हमें ये सिखाता है कि निरंतर जागरूक रहो। कब क्या हो कुछ पता नहीं! निरंतर जागरूकता ये काल हमें सिखाता है। ये उनका कार्यक्षेत्र है। काल का ये स्वधर्म है। और तीसरा उसका स्वधर्म बताया है अवसर का सदुपयोग। ये नव दिन है। काल हमें क्या देता है कि नव दिन का सदुपयोग कर ले। तीन घंटे की कथा है। काल हमें क्या देता है? जागरूक होकर सुन; सावधान होकर सुन।

'यमनोत्री' का 'म' वर्ण है उसके देवता है भगवान राम। यमनोत्री राम के बिना पूरी नहीं होती। और राम की शक्ति है मर्यादा; आह्लादिनी शक्ति जानकीजी है। मर्यादारूपी शक्ति के तीन कार्य है। मर्यादा के तीन कार्यक्षेत्र। एक, नियम पालना। दूसरा, कोई भी परिस्थिति में अचल रहना। और तीसरा है, सबके साथ मैत्री रखना। 'नो' वर्ण है उसके देवता का नाम है वरुण। ये जलप्रवाह वरुण उसके देवता है। और वरुणरूपी देवता की शक्ति का नाम ईश। और ईशरूपी शक्ति का तीन कार्यक्षेत्र। एक भावोद्रेक। वियोग में विह्वलता ये दूसरा कार्यक्षेत्र है उसका। और तीसरा कार्यक्षेत्र तितिक्षा। अब 'त' अक्षर। 'त' के देवता है गणेश। और गणेशरूपी देवता की शक्ति का नाम है साफल्य। आप गणेश को आराधे, सफलता। और कार्यक्षेत्र तीन-विघ्नहरण, शुभकरण और बुद्धि की वृद्धि। युवान भाई-बहन, जिसको बुद्धि की वृद्धि करनी हो उसको गणेश को भजना। अब आखिरी वर्ण है 'री।' 'री' की देवता का नाम है 'राधा।' शक्ति है प्रेम। राधा का पर्याय-सगोत्री अर्थ है प्रेम, प्रीत। इसीलिए कोई राधा के बारे में आज तक निर्णय नहीं कर पाया कि ये कौन है? यद्यपि जरूर वृषभानुजा है। बहुत से रूपों का वर्णन है। लेकिन 'कबि अलखित गति बेष बिरागी।' है श्री राधातत्त्व। ये प्रेमतत्त्व है। प्रेमी की मूर्ति बनाई जा सकती है; प्रेम की मूर्ति बनानेवाला कोई शिल्पी पैदा नहीं हुआ है। ये जिस्म से महसूस नहीं किया जाय, रूह से महसूस करो।

कभी रोती कभी हंसती कभी लगती शराबी-सी।
महोब्बत करनेवालों की निगाहें और होती है।
- राज कौशिक

तो राधारूपी देवता की शक्ति जो प्रेम है, वो प्रेम का काम है प्रत्येक जीव में प्रेम का प्रकटीकरण करना। और दूसरा उसका कार्यक्षेत्र है द्वेष को निकालना। तो ये है 'यमुनोत्री।' अब गाओ, 'श्री वल्लभ विठ्ठल गिरिधारी, यमुनाजी की बलिहारी।' और 'यमुनाजी की बलिहारी' मानी क्या? यमुनाजी हमको कहती है, मेरी बलिहारी, मेरी उदारता, मेरा चमत्कार ये है कि आप मुझमें स्नान करोगे तो सब पानी निकल जाएगा। पान करोगे तो अंदर जाएगा। यमुना के पान की ही महिमा है। नहाना जरूरी है। नहाना, लेकिन फिर भी यमुनाजी की बलिहारी ये है कि मुझे लाख नहाओगे तो मैं बार-बार निकल जाउंगी! थोड़ा पीओ तो मैं तेरे अंदर उतर जाउंगी। आपको ये न हो कि तीर्थ में गये और नहाये तक नहीं! नहाना जरूर! लेकिन कोई आपको कहे कि आप जमुना में नहाये नहीं? तो कहना, गोपी कहती थी -

जमनानां नीरमां न न्हावुं।
मारे आजथकी श्याम रंग समीपे न जावुं।

हम श्याम रंग के निकट नहीं जायेंगे क्योंकि उसने हमको धोखा दिया है! जितनी-जितनी श्याम वस्तु है उसका निषेध कर दिया गोपीजन ने! इसका मतलब ये नहीं कि यमुना में नहीं नहाना। तो ये बलिहारी है कि आप नहाओ तो बहुत अच्छी बात है, लेकिन न नहाओ, मेरे बुंद कुछ तुम्हारे भीतर जाये तो तुम्हारे अंदर का भंवरा बाहर निकल जाएगा साहब! भंवर मानी? नाभि से उठते संशय को भंवर कहते हैं।

तो मेरे भाई-बहन, यमुना जल के सिकर, कुछ बुंद के पान करने से अंतर की पांच-पांच गांठ का ओपरेशन हो जाता है। पांच गांठ जो उपनिषदकार ने कहा है। कोई ग्रंथ, स्तोत्र एक गांठ का निराकरण करता है। कोई दो का करता है, लेकिन मैं बहुत जिम्मेवारी के साथ कहना चाहता हूं कि जमुनाजी पांचों गांठों का नाश कर देती है। ये यमुनाजी की महिमा है।

एक प्रश्न है, ''बापू, कथा में कल आपने कहा कि जमुनाजी मन, इच्छाएं, सत्त्व, प्राण और पुण्य की गांठ को मिटा देती है। उसका विस्तार करे। जमुनाजल में बह जाये तो प्राण जाये ही और आप यदि किसी दूसरे संदर्भ में प्राण की बात करते हैं तो प्राण गया, भजन-हरिनाम कैसे

होगा? तो प्राणगांठ का मतलब क्या है? हम तो यही सुनते हैं, धर्मकार्य का ये पुण्य, ये पुण्य। यदि जमुना भी पुण्य हर लेती है तो पुण्य करने की क्या जरूरत?''

मनश्चादि प्राण आदिश्च इच्छाआदिश्च
सत्त्व आदिश्च पुण्यआदिश्च इत्येषा पंचवर्गाणां।

पांच केन्सर की गांठें हैं अथवा तो रोग है। गोस्वामीजी ने 'उत्तरकांड' में गरुड की जिज्ञासा पर मनोरोग का विश्लेषण किया है। यहां थोड़ा बिलग रूप से लेकिन सार तो वही है कि हमारे जीवन के पांच रोग है, पांच ग्रंथियां है। उसके निकंदन करनेवाली ये यमुनाजी है। ये प्रवाह इससे हमें मुक्त कर देता है। पहली गांठ का नाम है मन। तो मन स्वयं रोग है। मन न होता तो बहुत-सी बिमारियों का उद्भव ही नहीं होता। मन एक गांठ है। और संतों ने काम किया है मन पर। तुलसीदासजी ने 'रामचरित मानस' में भी यही कहा, 'मोरें मन प्रबोध जेहिं होई।' मेरे मन का रोग जाय। 'राम भजि सुनु सठ मना।' हे मन! तू रोग बनकर मेरे जीवन में बैठा है। ये बात भी सही कि मन न हो तो कोई काम नहीं होगा; सुख-दु:ख का अनुभव नहीं होगा। लेकिन उपनिषद बहुत ऊंचाई की बात करते हैं इसलिए हमें भी इतनी ऊंचाई पर जाने के बाद ये समझना पड़ेगा, क्योंकि बहुत हाईट की बात है। हम जहां जी रहे हैं वहां तो मन जरूरी है। सुख-दु:ख हो, मन लगाकर काम करना, मन लगाकर सबकी सेवा करना। हर जगह मन जरूरी है। लेकिन धीरे-धीरे उपर जाने के बाद जब पतता लग जाता आदमी को, साधक को की मन भी एक गांठ है, एक रोग है।

तो एक गांठ है ये मन। दूसरी गांठ, 'प्राण आदिश्च।' प्राण गांठ है। अब प्राण पर तो जीवन है। प्राण का अर्थ प्राण निकल जाना नहीं, प्राण जब तक है तब तक जिजीविषा है कि अभी ओर जीना है, अभी ओर जीना है, अभी ओर जीना है। ये जिजीविषा की गांठ है। तो, प्राण गांठ नहीं है, जिजीविषा गांठ है। आदमी की जिजीविषा है, ओर जीना है; ये निकले। अयोध्यावासीयों को रामकथारूपी यमुना के पान से जिजीविषा गई, प्राण की गांठ गई। तो प्राण गांठ है इसका मतलब जिजीविषा गांठ है। प्राणबल तो होना चाहिए आदमी में, जरूर। प्राणबल है तो बोल सकते हैं; प्राणबल है तो आप सुन सकते हैं। प्राणबल तो साधना में जीवन के लिए बहुत आवश्यक है। बहुत जीना नहीं लेकिन जितना जीना है, बहुत मौज करना है, हरि भजना है, प्रेम से जीना है। रोते-रोते क्यों? तो जिजीविषा रोग है, प्राण नहीं। इसीलिए शास्त्र गुरुमुख से समझना पड़ता है! भाषांतर हम पढ़ लें तो यदि शंका बहुत मजबूत रहेगी कि प्राण की गांठ यमुनाजी ले लेगी तो कोई यमुनोत्री आयेगा ही नहीं! यहां बार-बार आओ। आना जरूरी है। क्योंकि जिजीविषा खींच लेगी।

तीसरी गांठ है इच्छा। इच्छा को तीसरी गांठ उपनिषद्कारों ने बताई है। और यमुना इच्छा छीन नहीं लेती, सब इच्छा पूरी कर देती है कि इच्छा बचे ही ना। काली के सामने जाकर 'माँ माँ' कह कर झार-झार रोते हैं ठाकुर रामकृष्ण देव कहते हैं कि माँ, मेरी एक ही कामना है और वो कि मेरी कोई कामना न बचे। और जगद्गुरु शंकर को फिर याद करूं -

न मोक्षस्याकांक्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुन:।

जब 'देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र' गाते हैं आदि गुरु शंकर तब कहते हैं, मुझे मुक्ति नहीं चाहिए; मुझे कोई चाह नहीं है। और तीन प्रकार की इच्छा को हमारे यहां तृष्णा कहा है। तुलसीदासजी उसकी चर्चा करते हुए 'मानस' में लिखते हैं -

सुत बित लोक ईषना तीनी।
केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।।

पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा, तीन प्रकार की इच्छाओं को रोग बताया है। इसका मतलब कोई पुत्र की कामना करे तो कोई बुरा नहीं है। दशरथ ने भी यही कामना की थी। पुत्र की इच्छा जरूर देवताओं के पास रख ली जाये, लेकिन ये इच्छा न पूरी हो तो शिकायत भी न हो। तो समझना कि एषणा भगवती की कृपा से दूर हो गई है। बाकी संसारी चाहेगा कि हमें पुत्र मिले। वित्त, पैसे भी हमें जरूरी है। बड़े-बड़े त्याग की बात खोखली सिद्ध होती है। जरूरी है पैसे। ऐसे सत्कर्म करने होते हैं तो पैसे जरूरी है।

चार पदार्थ है हमारे यहां धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। उसकी सी छोटी-सी फोर्म्यूला समझ लीजिए। धर्म धारण करने के लिए है, दूसरों पर थोपने के लिए नहीं है। धर्म धारण धरने की चीज़ है। और अर्थ, परमात्मा ने जिसको दिया वो उसका सद्व्यय करे। अपना दशांश निकालते जाओ। पैसे चाहिए। धन के बिना कुछ हो ही

नहीं सकता। कम से कम रोटी तो खानी पड़ेगी। तो रोटी के लिए पैसा जरूरी है। कपड़े के लिए पैसा जरूरी है। मकान के लिए पैसा जरूरी है। लेकिन फलां के पास इतने पैसे हो गये है और मैं जरा पीछे रह गया ये जो वित्तेषणा है, वो रोग है। अपने क्षेत्र में कमाते जाओ। खूब कमाओ। स्पर्धा छोड़ो। लेकिन तकलीफ़ दूसरा ज्यादा कमा ले उसीकी है न! एषणा है गांठ। रामकथा यमुना बनकर समस्त एषणा समाप्त कर देती है। कई लोगों को पुत्रेषणा न भी हो; पैसे की एषणा भी न हो लेकिन ये तो कुबूल करना पड़ता है साहब कि कीर्ति की एषणा, हमारी जयजयकार हो ऐसी एषणा होती है। इच्छा खराब नहीं है, सीमा में हो तो। यमुनाजी इतनी इच्छा पूरी कर देती है कि कोई इच्छा ही बचती नहीं। 'मानस' की जमुना में क्या आया है?-

नाथ आजु मैं काह न पावा।
मिटे दोष दुख दारिद दावा।

वो केवट एक गरीब भी, जिसके पास कुछ नहीं है वो कहता है, आज मुझे क्या नहीं मिला? अब कोई एषणा नहीं। जनम-जनम से मज़दूरी करता आया, आज तूने सबका सब दे दिया। राम दबाव डालते हैं कि तू कुछ ले। तो कहता है कि नहीं, कोई एषणा नहीं बची है। 'मानस' की कथा यमुना बनकर एषणा से, इच्छा अतिरेक से मुक्त कर देती है।

चौथा सूत्र है उपनिषद का सत्त्व आदि से मुक्ति। ये जरा कठिन पड़ेगा! सत्त्व छूट जाये! और हम तो ये चाहते हैं कि तमोगुण छूट जाये; रजोगुण थोड़ा छूट जाये; सत्त्वगुण तो बना रहे। लेकिन उपनिषद कहते हैं, सत्त्वगुण भी छूट जाये। यमुनाजी सत्त्वमुक्ति देती है। अब सत्त्वगुण तो अच्छा है। तो सत्त्वगुण यमुनाजी हर ले ये तो जरा विचित्र लगता है! लेकिन ध्यान से आप समझ ले कि आप 'यमुनाष्टक' का एक सौ आठ बार पाठ करे, फिर दूसरों को आप कहे कि मैं एक सौ आठ बार 'यमुनाष्टक' का पाठ करता हूं तो सत्त्वता तुम्हारा रोग बन चुकी है! है सत्त्व, लेकिन हम जब गिनती शुरू कर दे, जो नहीं कर पाता है उसको हम न्यून समझे ये सत्त्व बीमारी की गांठ है। यमुनाजी इससे मुक्त करती है। इसीलिए हमारे यहां गुणातीत श्रद्धा की महिमा आई कि सत्त्व भी मिट जाये। ब्रह्मानंदजी ने गाया -

त्रिगुणातीत फिरत तन त्यागी,
रीत जगत से न्यारी।
ब्रह्मानंद संतन की सोबत,
मिलते हैं प्रगट मुरारि।
जगत मांहीं संत परम हितकारी।

यमुनाजी की कृपा से सत्त्वगुण मिटेगा। यमुनाजी का पाठ तो होगा ही, पूजन होगा, सब होगा। लेकिन वो दूसरा जाने, दूसरे को बताना ये वृत्ति निकल जाये। इसी अर्थ में ये गांठ है। आखिरी जरा ज्यादा मुश्किल गांठ है और वो है 'पुण्यादिश्च...' पुण्य ये भी गांठ है। ये बात समझ में आई होगी तभी तो जगद्गुरु शंकराचार्य ने कहा होगा, 'न पुण्यं न पापं...' ये पुण्य भी निकल जाओ। आदमी खाली हो जाये। पुण्यात्मा होना अच्छा है मानवजीवन में, जगत में; व्यवहारजगत में पापात्मा होना अच्छा नहीं है चलो। लेकिन पुण्यात्मा या पापात्मा ये दोनों छोड़कर जैसे हो वैसे होना वो ही महत्त्व का है। तो पुण्य भी बंधन तो है साहब! जरूर बंधन है। पुण्यकर्म, अच्छे कर्म करने चाहिए, लेकिन है तो वो भी बंधन। मेरे कहने का मतलब पुण्य भी एक गांठ है, इसीलिए 'न पुण्य न पापं...' आदमी सभी द्वंद्व से मुक्त हो। बहुत ऊंची बात है। हम जैसों के पाले नहीं पड़ती। बोलना अच्छा लगता है, सुनना भी अच्छा लगता है।

रामकथा यमुना बनकर समस्त एषणा समाप्त कर देती है। यमुनाजी इतनी इच्छा पूरी कर देती है कि कोई इच्छा ही बचती नहीं। 'मानस' की जमुना में क्या आया है? वो केवट एक गरीब भी, जिसके पास कुछ नहीं है वो कहता है, आज मुझे क्या नहीं मिला? अब कोई एषणा नहीं। जनम-जनम से मज़दूरी करता आया, आज तूने सबका सब दे दिया। राम दबाव डालते हैं कि तू कुछ ले। तो कहता है कि नहीं, कोई एषणा नहीं बची है। 'मानस' की कथा यमुना बनकर एषणा से, इच्छा अतिरेक से मुक्त कर देती है।

तो इन सभी ग्रंथियों से यमुनाजी मुक्त करती है। और तुलसी के कहने पर 'मानस' जब यमुना है, तब तुलसी ने स्पष्ट कह दिया -

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।

तो-

जम गन मुहँ मसि जग जमुना सी।
जीवन मुकुति हेतु जनु कासी।।
बहुरि राम जानकिहि देखाई।
जमुना कलि मल हरनि सुहाई।।

गोस्वामीजी कहते हैं, जम के गणों के मुंह पर कालिमा पोतने में ये रामकथा यमुना है और जीते जी मुक्ति देने में ये रामकथा काशी है। और दूसरी पंक्ति का अर्थ है, भगवान राम जब लौट रहे हैं रावण को निर्वाण देकर अयोध्या की ओर तब यमुना को 'कलिमलहारी' कहकर जानकीजी को दर्शन कराते हैं कि ये जमुनाजी है; उसको प्रणाम करो। इससे कलियुग के मेल को विसर्जित होना है। ऐसी 'रामचरित मानस' की यमुना को केन्द्र में रखते हुए चर्चा कर रहे हैं। आईए, शेष समय है उसमें कथा के क्रम में जाउं।

गोस्वामीजी ने हनुमानजी की वंदना के बाद सखाओं की वंदना की है। उसके बाद सीतारामजी की वंदना हुई और उसके बाद भगवान के मंगलमय नाम की महिमा भूरिश: की है। कलियुग में जितनी नाम की महिमा है, इतनी ध्यान की नहीं है। कोई ध्यान करे, किसी को लग जाये तो दूर से उनको प्रणाम करना। लेकिन कलियुग सबके लिए ध्यान की मौसम नहीं है, नाम की मौसम है। कलियुग बड़े-बड़े यज्ञ की मौसम नहीं है, नाम की मौसम है। कलियुग घंटों तक पूजा-अर्चा में हम बैठ जाये, ये मौसम नहीं है, हरिनाम की मौसम है। गोस्वामीजी नाम महिमा बहुत करते हैं। कलियुग की प्रधान साधना हरिनाम है। इसीलिए जिस इष्टदेव के नाम में हमारी रुचि हो ये नाम जितना अधिक मात्रा में जपा जाय, लिया जाय, कीर्तन किया जाय। प्रभु के कई नाम है। सब नाम बिलकुल महान है। बिलकुल समादर से कोई भी नाम लो। राम, शिव, दुर्गा, भवानी, अल्लाह, बुद्ध, महावीर जिसको जो रास आये।

तो प्रभु का नाम का आश्रय करे। युवान भाई-बहनों को मैं खास बार-बार कहता हूं कि सब काम करने के बाद जब कोई काम शेष नहीं है; नींद भी नहीं आ रही है, किताब भी पढ़नी अच्छी नहीं लग रही है, टी.वी. भी नहीं देखना है और फिर भी आप समय बिता न पाये तब वो समय हरिनाम में बिताना। मधुसूदन सरस्वती का ये मंतव्य है। जो काल को व्यर्थ गंवा दे वो बहुत घाटे का सौदा कर रहा है। अपना स्वधर्म, अपना कर्तव्य छोड़ने की बात है ही नहीं। लेकिन कभी-कभी कुछ करने को नहीं होता है, तब क्या करोगे? तब और कुछ सोचे बिना हरिनाम का आश्रय, बस। सब स्वतंत्र है कि कौन नाम जपना?

नाम की महिमा के बाद तुलसीदासजी रामकथा का पूरा इतिहास कहते हैं। आज किसी ने मुझे पूछा है कि 'कथा और इतिहास में क्या फ़र्क है? 'उत्तरकांड' की एक चौपाई लिखी है -

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा।
सुनत श्रवन छूटहिं भवपासा।।

तो बापू, ये पुनित परम इतिहास सुनने से भवबंधन छूटे?' अब, शास्त्र पर भरोसा करो ना! परमपवित्र इतिहास सुनने से भवबंधन मिट जाता है, ऐसा शास्त्र ने खुद ने कहा है फिर प्रश्न करने की जरूरत नहीं है। 'महाभारत' क्या है? इतिहास ग्रंथ है। साहित्यिक बोली में 'रामायण' को भी इतिहास ग्रंथ कहते हैं। तो इतिहास की भी एक महिमा है। लेकिन इतिहास और अध्यात्म में अंतर इतना है। कथा इतिहास नहीं है, कथा में इतिहास कहा जाता है; जो घटनाएं घटी है उसको कथा में कही जाती है, लेकिन कथा केवल इतिहास नहीं है; कथा अध्यात्म है। और किसने कहा है मुझे पता नहीं, लेकिन किसी का वाक्य जरूर है कि इतिहास के लिए तथ्य की जरूरत पड़ती है, प्रमाण जुटाने पड़ते हैं। लेकिन अध्यात्म के लिए केवल सत्य की जरूरत पड़ती है। अध्यात्म सत्य से गति करता है, इतिहास तथ्यों से, प्रमाणों से। इतिहासकार और कथाकार में अंतर है। कथाओं ने कईयों को जगाया है साहब! तो ये जगानेवाली जो कथा है इस श्रेणी में तीन आते हैं। कथा गुरु से सुनना कोई बिलग वस्तु है। कथा सद्‌गुरु से सुनना कोई बिलग वस्तु है। कथा कोई बुद्धपुरुष से सुनना ये बिलग वस्तु है। तो ऐसी परम पावनी कथा यमुना के तट पर चल रही है।

मानस-जमुना : ३

धर्म में जब जिद्द आ जाती है तब धर्म का लिबास रहता है, धर्म की आत्मा खतम हो जाती है

बाप! इस परम पावन क्षेत्र में गाई जा रही रामकथा के तीसरे दिन के आरंभ में माँ यमुना को प्रणाम करते हुए, यहां की समस्त चेतनाओं को प्रणाम करते हुए, आप सभी को मेरा प्रणाम। और साथ-साथ बधाई कि आज अक्षयतृतीया है। जिस महापुरुष ने आक्रमण के लिए नहीं, संरक्षण के लिए शस्त्र उठाये थे ये परशुरामजी की आज जन्मजयंती है। शस्त्र आक्रमण के लिए न हो, संरक्षण के लिए हो। मेरी कल्पना में तो शस्त्र होने ही नहीं चाहिए क्योंकि होते हैं तो आक्रमण करने की इच्छा होती है। जेब में पेन हो तो कुछ न कुछ करने की इच्छा हो ही जाती है। तो आज के दिन की आप सबको बहुत-बहुत शुभकामनाएं; बधाई।

'मानस-जमुना', जिसकी चर्चा हम कर रहे हैं। बहुत से प्रश्न हैं। लेकिन एक बहुत प्यारा प्रश्न है। एक ही प्रकार के प्रश्न पूछे गये हैं कि आप कहते हैं कि यमुना में स्नान करने की जरूरत नहीं। सबने ये स्वीकार कर लिया है! अपने पक्ष में जो बात आती है वो तुरंत स्वीकार हो जाती है! बोले, बापू, आप अच्छा काम कर गये कि पान करने की ही जरूरत है। 'भवति ते पय: पानत:'; 'यमुनाष्टक' में लिखा है। यमुनाजी के ये जल जो दूध जैसा है उसका पान करो। 'यमुनाष्टक' में महाप्रभुजी स्वयं आज्ञा देते हैं। लेकिन इसका मतलब ये नहीं कि हम सिद्धांत के रूप में उसको ले ले कि स्नान करना ठीक नहीं। तो जो स्नान करे वो कर सकते हैं। लेकिन मैं आपको ये जानकारी देना चाहूंगा कि दो महापुरुष ऐसे हुए वल्लभकाल में, एक कुंभनदास और दूसरे श्रीमद् गोविंदस्वामी, जिन्हों ने जिंदगी में कभी यमुना में स्नान नहीं किया! पकड़-पकड़कर खींचकर भी कोई ले जाते थे, बलात् भाग जाते थे! पूछा जाता था कि आप क्यों यमुनाजी में स्नान नहीं करते हैं? तो कहते हैं, मेरा तामस देह है और यमुना बहुत पवित्र है। उसमें मेरी मलिनता डालना मुझे शोभा नहीं देता। ये भी एक पक्ष है। उसके सामने वल्लभ की परंपरा में कई आचार्यों ने ये भी कहा है कि गंदा भी सही लेकिन बालक तो माँ की गोद में जाना ही चाहिए। ये भी पक्ष है। आपको जो अनुकूल पड़े वो पक्ष कुबूल करना। लेकिन यहां स्नान न करो तो चलेगा, लेकिन वृंदावन में तो स्नान करना। मथुरा की भाईबीज में तो लोग स्नान करने के लिए ही मथुरा जाते हैं। और 'श्रीमद् भागवतजी' में गोपीजनों ने कृष्णमिलन के लिए जो व्रत किया है कात्यायनी उसमें रोज यमुना स्नान करके ये व्रत करती थी। तब जाके कृष्ण ने उसको वचन दिया था कि पूर्णिमा की रात्रि को मैं आपको साक्षात्कार करवाउंगा। तो स्नान करने की महिमा है।

''बापू, आपने 'रवितनया' और सूर्यपुत्र कर्ण पर भी कल थोड़ी दृष्टि डाली। सूर्यपुत्र तो शनि भी है। उस पर भी कुछ कहे। जिससे हम भयमुक्त होकर अभय हो जाये।'' एक भाई ने ऐसा भी पूछा है कि ''सूर्यपुत्र यमदेव भी है और कर्ण भी है तो यमदेव ने कर्ण को मरने क्यों दिया? भाई, भाई को नहीं बचाता?'' खयाल ठीक नहीं है। खयाल सही नहीं है। जितने ही भाई-भाई प्रीत से जुड़े हो लेकिन यहां किसी को बचाना मुश्किल है। सब अपने कर्म के हिसाब से चले जाते हैं। यहां सब मरणधर्मा है। सब अपने-अपने ढंग से जाते हैं। रही शनिदेव की बात। शनिदेव भी सूर्य का बेटा है ये बात भी तो ठीक है। और आजकल शनि की बात बहुत चलती है, लेकिन शनिदेव भयभीत करते हैं आदि-आदि जो खयाल है आपके! जो हो, मेरी तो कोई जानकारी भी नहीं उसमें। मैं जाना भी नहीं चाहता। लेकिन उसका जवाब तुलसीदासजी ने 'मानस' में दिया है।

एक पिता के बिपुल कुमारा।
होहि पृथक गुन सिल अचारा।।

गोस्वामीजी लिखते हैं, एक पिता के कई पुत्र होते हैं। और सबके गुण, आचार, शील भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ जिन्स की एक प्राकृतिक धारा जो होती है वो तो सब में एक होती है। लेकिन गुण, आचार, शील भिन्न-भिन्न होते हैं। तो, शनिदेव के गुण, इसके आचार भिन्न रहे होंगे, यमदेव के भिन्न रहे होंगे। कर्णदेव के भिन्न रहे होंगे।

प्रश्न है, 'रामनाम लेनेवाले किसी ओर इष्ट का नाम लेता और हमारा नाम ही सर्वोत्तम है ऐसा कहना आपने कहा गलत है, लेकिन श्री महाप्रभुजी ने जो एक नाम की अनन्यता की बात की वो क्या है? कुछ कहे।' कल हमारी जो बात हुई थी आप रामनाम, कृष्णनाम जो भी नाम ले रहे हैं, लेकिन हमारा नाम ही श्रेष्ठ ऐसा किसी पर दबाव नहीं डालना चाहिए। अन्यन्यता की बात नाम की, रूप की एक बिलग है। मैं किस नाम लूं, किस मंत्र का जप करूं? लेकिन आप मेरे पास कभी-कभी बैठे होंगे तो आपको पता होगा कि मैं कभी-कभी 'हे हरि' बोल लेता हूं; 'हे गोविंद' बोल लेता हूं; 'गुरुदेव समर्थ' बोल लेता हूं। तो सहज उठ जाय इसमें अनन्यता टूटेगी नहीं। क्योंकि सहजता ये हमारा प्रयास नहीं है; ये अंदर से उठी एक पुकार है। तो महाप्रभुजी जब कहे कि एक ही आश्रय, तो ये एक अद्‌भुत पक्ष है। लेकिन इस बात को कुबूल करते हुए भी, आप राम को ही मानते हैं, लेकिन आप के मुख से 'हे गोविंद' निकल जाये तो गोविंद समझता है कि ये राम ही बोल रहा है। धर्मावलंबी आदमी न समझे तो न समझे!

मैं गोस्वामीजी की रोटी खाता हूं; उसके 'मानस' को गाता हूं; उस पर ही जीवन है, फिर भी तुलसीदासजी की कई बातें हैं जिसके साथ मैं सहमत नहीं हो पाता। तो ये मेरी निजता है। इससे तुलसीदासजी नाराज़ नहीं होंगे। तुलसीदासजी को नाराज़ होना नहीं चाहिए। तुलसीदासजी नाराज़ हो जाये तो वे तुलसी नहीं है। क्योंकि कालांतर में किसी भी बुद्धपुरुष के वचनों को संशोधित करना पड़ता है। तीन वस्तु ही जगत में कभी नहीं बदलेगी। बाकी सब देश-काल के अनुसार बदलना पड़ता है। तीन वस्तु नहीं बदलेगी-सत्य, प्रेम और करुणा। ये अखंड, अनंत, शाश्वत रहेगा। मेरा बोला भी सो साल के बाद हो सकता है, अप्रासंगिक बन जाय! देश-काल के संदर्भ में संशोधन होना चाहिए। तो जिद्द क्यों? धर्म में जब जिद्द आ जाती है तब धर्म का लिबास रहता है, धर्म की आत्मा खतम हो जाती है। और इस कट्टरता ने इस प्यारी पृथ्वी पर अनेक युद्ध पैदा किये हैं, ऐसा ओशो का निवेदन है। यद्यपि व्रजवासियों ने जिद्द की थी कि व्रजवासी तुलसीदासजी की अनन्यता की कसौटी करना चाहते थे तो कहे कि आपके राम इष्ट है, राम के सिवा आप किसी के पास झुकते नहीं तो ये देखो, ये भगवान कृष्ण के सामने झुकते हो कि नहीं? तो तुलसी ये जरा जिद्द करने लगे थे। लेकिन कभी-कभी मुझे ये होता है कि गोस्वामीजी को भी ये जिद्द करने की क्या जरूरत थी? सिर झुका देना चाहिए था साहब! कृष्ण को कष्ट देने की क्या जरूरत थी कि तू मेरे लिए धनुषबाण ले ले! अरे! बड़ी मुश्किल से मुरली आई है! अब दुनिया को तो मुरली चाहिए; धनुष नहीं चाहिए; बाण नहीं चाहिए। मेरे पास आज एक शे'र है -

सिर्फ़ खंजर नहीं, आंखों में पानी भी चाहिए।

तुम्हारे और मेरे आंसू खतम न हो जाए इसीलिए सेव वोटर। बाहर का पानी भी बचाने की जरूरत है। नेत्र का पानी भी बचाने की बहुत जरूरत है। यमुनाजी को कैसे पा सकोगे? बौद्धिक चतुराइ से अर्थो करने से यमुना आत्मसात् नहीं होगी। आप नहाते हैं, हम नहाते हैं, न्हाने के बाद टोवेल से शरीर को पोंछते हैं। टोवेल भीगा तो हो ही जाता है। यदि हमने स्नान नहीं किया, शरीर पर धूल है, पोंछे तो टोवेल पे मलिनता चली जाएगी। यमुना ऐसी नहीं है। यमुना ऐसी कलिमल हरनी है कि आप उसमें कितना ही मल डालो तो भी वो सुंदर और स्वच्छ रहती है। ये उसकी चारुता है। तो ये शे'र सुनिए -

सिर्फ़ खंजर नहीं आंखों में पानी भी चाहिए।
खुदा दुश्मन भी मुझको खानदानी चाहिए।
मैंने ये सूरज तुझे पूजा नहीं, समझा तो है।
मेरे हिस्से में भी थोड़ी धूप होनी चाहिए।

हे यमुनाजी, हमने तुझमें स्नान नहीं किया लेकिन समझा तो है। समझने की कोशिश तो कर रहे हैं। हे सूरज, मेरे भाग में भी थोड़ी उर्जा, थोड़ी उष्णता होनी ही चाहिए। राहत इन्दौरीसाहब के ये शे'र है। तो, अनन्यता का का अर्थ जब कट्टरता कर दिया गया! एक जिद्द! अध्यात्म में जिद्द नहीं चलती। जिद्द इसीलिए लोग करते हैं कि उसको जीतना है। अध्यात्म जीतने का क्षेत्र नहीं, उसमें हारना ही होता है। जिद्द क्यों? किसको जीतना है? कौन पराया है यहां?

प्रश्न है, 'बापू, इर्ष्या, निंदा ये तो हम समझ सकते हैं। लेकिन द्वेष की बात कहते हैं वो जरा विस्तार से कहे।' द्वेष का मेरा मतलब है आपको और मुझे दूसरा दिखाई देता है। दूसरे के बिना आप द्वेष नहीं कर पाते। 'न मैं द्वेषरागो।' जगद्‌गुरु को दूसरा कोई दिखा ही नहीं। 'चिदानंद रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्।' श्रीमद् वल्लभ के वचन हैं कि जीव में पांच प्रकार के दोष है। ये बिलकुल परफेक्ट चिंतन है मेरी दृष्टि में। मैं कोई संप्रदायवादी आदमी नहीं; आप जानते हैं, पूरा जमाना जानता है। पूर्वग्रह से कोई न कुबूल करे तो उसको अल्लाह सलामत रखे! बाकी हम कोई संप्रदाय में आबद्ध नहीं होंगे। लेकिन महाप्रभुजी जब कहते हैं तब बहुत अद्‌भुत बात करते हैं। पांच दोष प्रत्येक जीव के है, हम सबमें होते हैं। पहले दोष का नाम महाप्रभुजी ने बताया, 'सहज।' इर्ष्या, निंदा, तृष्णा ये सब समझ में आता है और द्वेष समझ में नहीं आता तो समझना, कहीं सहज तो नहीं हो गया है? हो सकता है! कई प्रकार के द्वेष से हम पीड़ित है! और इतने सत्संग के बाद, मेरे इतने गाने के बाद भी मेरा द्वेष न जाये। आपका द्वेष सुनने के बाद न जाय तो समझना, महाप्रभुजी ठीक फरमा रहे हैं कि ये सहज है। सहज दोष का नाश होता है कोई सहज सद्‌गुरु मिल जाये। तुम खोजो तो नहीं! जितने को खोजोगे उसमें खामी मिलेगी। और आपकी आत्मा जब कहे कि सही मोड़ पर, सही समय पर हमें कोई मिल गया तो समझना ये सहज है। खोजने में खामी है, है, है। क्योंकि खोजनेवाला खामी से भरा है। जैसे ध्रुव को नारद मिल गये। प्रयास करने से तो हम कहां पहुंच पाये? कैसे पहुंच पाये? तेरी हवेली बड़ी ऊंची है। नरसिंह महेता भी कह गये -

ऊंची मेडी ते मारा संतनी रे ...

हम विकलांग कैसे सोपान चढ़ पाये? अवसर है आनंद पाने का। द्वेष के कारण हमारा आनंद खोया जा रहा है; छूटा जा रहा है।

तो बाप! महाप्रभुजी एक दोष को सहज दोष कहते हैं। दूसरा दोष, 'देशज।' श्रीमन् महाप्रभुजी वल्लभाचार्य। 'सिद्धांत रहस्य' ग्रंथ के ये सूत्र हैं। आप किसको भी मानो, वल्लभ विचारधारा जो है उसके कुछ ग्रंथ है, जितना समझ में आये कभी-कभी पढ़ना। अपने इष्ट की गति बढ़ेगी। कहते हैं, दूसरा दोष है जीव का 'देशज।' जिस देश में हम रहते हैं उनके कारण कुछ दोष आते हैं। जिस स्थान में हम रहते हैं उस स्थान के कारण कुछ दोष जीव में आते हैं उसको देशज दोष महाप्रभुजी कहते हैं। ठंडे मूलक में रहनेवाले शराब पियेंगे ही। तो ये देशज दोष माना गया है।

तीसरा दोष कहा है, 'कालज।' काल के कारणे दोष आता है हमारे में। जैसे कलिकाल है तो काल का प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर, हमारे मन पर रहता है। ये दोष पैदा करता है। 'संयोगज।' किसी लोगों की सोबत में आने से दोष प्रकट होते हैं वो संयोगज दोष है। और पांचवां दोष है, 'स्पर्शज' दोष। स्पर्श करने से दोष आता है। अस्पृश्यता की बात नहीं है। जैसे मल हाथवाले के साथ आप हस्तमिलन करेंगे तो उसका मैल आपके हाथ को लगता है, ये स्पर्शज दोष है। मुझे तो फिर 'मानस' में देखना पड़ता है कि मेरे तुलसीदासजी ने महोर लगाई इस पर तो फिर मुझे ज्यादा बल मिलता है। महाप्रभुजी कहे तो तो फिर बात खतम हो गई! मेरी बहुत निष्ठा है महाप्रभुजी के प्रति। लेकिन मुझे जो लगता है, 'मानस' में विभीषण का जो जीवन है उसकी बोली में ये पांचों दोष की चर्चा है, जो महाप्रभुजी ने की है। एक तो सहज दोष की चर्चा विभीषण ने की है।

सहज पापप्रिय तामस देहा।
जथा उलूकहि तम पर नेहा।।

मेरे में सहज पाप है, सहज दोष है, विभीषण कहता है। अब देशज दोष -

लंका निसिचर निकर निवासा।
इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।

देशज दोष थोड़ा तो रहा। जानकीजी अपहृत की गई है और रावण की सभा का एक मंत्रीपद भोग रहा है ये आदमी फिर भी कुछ बोल नहीं पाता ये उसमें देशज दोष है। कुछ भूमि

की असर उसकी मानसिकता को प्रभावित कर रही है। तो ये देशज दोष है। और कालज दोष है। जब तक विभीषण मंत्रीपद पर काम रहा था तब तक वो रावण की सभा में बलवा नहीं बोल पाया है। ये कालज दोष था। समय आता है, आदमी विद्रोह करता है। आदमी कालज दोष मुक्त हो गया। संयोगज दोष; सोबत का दोष।

खल मंडली बसहु दिनु राती।

सखा धरम निबहइ केहि भाँती।।

तो पांच दोष जो महाप्रभुजी ने गिनाये इससे मुक्त होना है। जो सहज दोष है उससे मुक्ति मिलती है कोई सहज सद्गुरु मिल जाये। देशज दोष से मुक्ति मिलती है, उसी स्थान को छोड़ा जाय।

हवे तारो मेवाड मीरां छोड़शे,

गढने होंकारो तो कांगराय देशे,

पण गढमां होंकारो कोण देशे?

राणाजी, तने ऊंबरे होंकारो कोण देशे?

हवे तारो मेवाड मीरां छोडशे।

- रमेश पारेख

उसी स्थान को छोड़ा जाय, उस देश को छोड़ा जाय ये निवारण है। विभीषण ने देश छोड़ा। मैं अब उनकी सत् की शरण जा रहा हूं। कालज दोष इससे मुक्ति मिलती है वर्तमानकाल में जीने से। क्योंकि एक तो भूतकाल का दोष हमें पकड़े हुए है जो हमारी स्मृति से हटता नहीं है। हमारी साथ ये हुआ, ये हुआ! ये हमें ईर्ष्या, निंदा, द्वेष की ओर धक्का देता है। अथवा तो भविष्य में ये करके दिखाउंगा! मैं ये करूंगा, ये करूंगा! ये दोनों काल से मुक्त होना है तो वर्तमानकाल में जीए। और संयोगज दोष सत्संग से छूटता है। खराब सोबत का दोष अच्छी सोबत से मिटता है। और स्पर्शज दोष; शास्त्रों का अर्थ लूं तो कहा जाता है कि सोने को छूने से कुछ दोष कम हो जाते हैं। गौमाता का स्पर्श, स्पर्शज दोष से मुक्त करता है। पवित्र तीर्थों का स्पर्श करने से भी स्पर्शज दोष जाता है। नहाने की बात आती है तब मैंने एक बहुत प्यारी बात कभी कही है, आपको नहाने की अनुकूलता न हो तो आपके आंगन में तुलसी का गमला है इसमें से थोड़ी मिट्टी लेकर आप सर पर स्पर्श करा दे वो स्नान माना गया है। महाप्रभुजी का एक वक्तव्य है। पहले तो मैं सहमत नहीं हो पा रहा था। लेकिन पूरा पढ़ा तो पता लगा कि भगवन्, गज़ब हो आप! महाप्रभुजी का एक वक्तव्य है कि जीव स्वभाव से दुष्ट है। मुझे 'मानस' को पूछना पड़ेगा। मेरा घराना 'मानस' है। और जब कृष्ण स्वयं कहते हैं, 'ममैवंशो जीवलोके सनातन ...।' जिसको सनातनता बक्ष दी जीव को, वो स्वभाव से दुष्ट कैसे हो सकता है?

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।

चेतन अमल सहज सुखरासी।

इतनी जीव की चेतनता है। इश्वर जितना निर्मल इतना जीव निर्मल है। इश्वर जितना अविनाशी इतना जीव अविनाशी है। तो जीव स्वभाव से दुष्ट है? तब मैं रुक गया था साहब! लेकिन महाप्रभुजी कहते हैं कि माया और माया के रजोगुणी आवरणों के कारण जीव का स्वभाव दुष्ट हो गया है। और तुलसी फिर सहाय में आते हैं -

सो मायाबस भयउ गोसाईं।

बँध्यो कीर मरकट की नाईं।

एक आवरण आता है तो जीव का स्वभाव दुष्ट बन जाता है। आवरण हटे, बात खतम! तो महाप्रभुजी बहुत मदद करेंगे आपको, 'रामायण' समझने में भी बहुत मदद करेंगे, येस। सभी आचार्यो मदद करेंगे। लेकिन इष्टग्रंथ छोड़ना मत। बाकी लाभ सब से लो। फिर तुलना में मत जाना।

मैं आपसे ये कह रहा हूं कि 'यमुनाष्टक' का जो नववां श्लोक है, इसमें 'यमुनाष्टक' के पाठ करनेवालों को जो फलादेश बताया गया है पांच; और फिर ये यमुना ('मानस') जो है इनमें पांचों सिद्ध होते हैं। इसी अर्थ में आप से कहना चाहूंगा।

तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसुते सदा।

समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः।।

तया सकलसिद्धयो मुररिपुश्च संतुष्यति।

स्वभावविजयो भवेत् वदति वल्लभः श्री हरेः।।

वल्लभ बोल रहे हैं, हे सूर्यसुता, हे रवितनया, ये आपका 'यमुनाष्टक' जो वल्लभ ने गाया है उसको जो कोई पढ़ेगा, गायेगा, पारायण करेगा, तो क्या होगा? 'समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः।' उसके समस्त दोष खत्म हो जायेंगे। 'दुरित' बड़ा प्यारा शब्द है; संस्कृत शब्द है। दुरित का क्षय हो जाता है। ये 'यमुनाष्टक', 'रामचरित मानस' उसको कोई पढ़े तो? समस्त दुरित नष्ट हो जाते हैं। मन, वचन और कर्म से कायिक, वाचिक और मानसिक जितने भी हम से दुरित हुए हैं ये 'मानस' को, 'यमुनाष्टक' को पढ़ेगा उसके दुरित क्षय हो जायेंगे।

मन क्रम बचन जनित अघ जाई।।

सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई।।

महाप्रभुजी के मुख से स्वाभाविक निकला ये 'यमुनाष्टक' का फल है दुरित से मुक्ति। और ये 'मानस'रूपी जमुना भी यही काम करता है कि समस्त दोषों से मुक्त कर देती है।

'भवति वै मुकुन्दे रतिः।' दूसरा फल 'यमुनाष्टक' का। मुकुन्द मानी भगवान कृष्ण के चरणों में रति बढ़ेगी। भाव बढ़ेगा। अब पाठ किस रूप में हम करते हैं उस पर डिपेन्ड है। लेकिन कैसे भी 'भायँ कुभाय अनख आलसहू।' करते हो। और ये ('मानस') यमुना?

राम चरन नूतन रति भई।

माया जनित बिपति सब गई।।

'भवति वे मुकुन्द रतिः।' ये दूसरा फल 'मानस-यमुना' का 'यमुनाष्टक' का पाठ करेंगे उन्हें श्रीमन् वल्लभाचार्य भगवान वचन देते हैं, भरोसा देते हैं, उसको सब सिद्धि प्राप्त हो जाएगी।

मनकामना सिद्धि नर पावा।

जो यह कथा कपट तजि गावा।

मेरे गोस्वामीजी कहते हैं, जो व्यक्ति कपट छोड़कर इस कथा का गायन करेगा उसको मनकामना की सिद्धियां प्राप्त हो जाएगी। 'यमुनाष्टक' का पाठ करे उसका चौथा फल, भगवान कृष्ण 'यमुनाष्टक' पाठ करनेवाले पर संतुष्ट हो जायेंगे, प्रसन्न हो जायेंगे। इससे सरल साधन कौन हो सकता है? वैष्णवों के लिए 'यमुनाष्टक' का पहले पारायण ये गणेश की स्थापना है और रामउपासकों के लिए 'हनुमानचालीसा' करना ये गणपति की स्थापना है। और 'रामायण' के उपासकों के लिए 'भुशुंडि रामायण' का पाठ ये पूरा है। और आखिरी, 'स्वभाव विजयो भवेत वदति वल्लभ श्री हरि।' स्वभाव पर विजय होगा। ये बहुत प्यारी बात कही। जिस स्वभाव को बदलना ग्रंथकारों ने बहुत दुर्गम माना है। वहां महाप्रभुजी कहते हैं, 'यमुनाष्टक' पाठ करने से स्वभाव पर विजय होगा; स्वभाव बदलेगा। 'यमुनाष्टक' का पाठ आपको करना होगा अथवा तो 'रामचरित मानस' का पाठ आपको करना होगा। हम लोग करते नहीं और कहते हैं, स्वभाव बदलता नहीं! मेरे पास सालों से व्यासपीठ से जुड़े कई लोग ऐसा कहते हैं कि बापू, स्वभाव बदल गया। साधु तुम्हारे दिन बदल देते हैं! वर्ना स्वभाव बदलना बहुत मुश्किल माना गया है। 'यमुनाष्टक' ये कर सकते हैं। तो 'मानस-जमुना' को केन्द्र में रखकर हम और आप कुछ बातचीत करते हैं। ये पन्ना फाड़कर लाया हूं तो बोल दूं -

गूम है होश हवाओं के, किसकी खुश्बू आई है?

चांद तरासे सारी उम्र, तब कुछ धूप कमाई है।

दिल पर किसने दस्तक दी, तुम हो या मेरी तन्हाई है।

- राहत इन्दौरी

कल कथा के क्रम में थोड़ी नाम महिमा की चर्चा हुई थी। उसके बाद कथा का पूरा एक पवित्र इतिहास बताया गया। तुलसी ने उसको भाषाबद्ध किया और चार घाट बनाये। कैलास घाट पर शिव कथा कहे, पार्वती सुने। तुलसीजी स्वयं शरणागति के घाट पर बैठकर अपने मन को ये कथा सुनाते हैं। और तुलसी कथा का आरंभ करके शरणागत से सीधा कर्म में हमें प्रवृत्त करते हैं। इसका मतलब ये हुआ कि कभी-कभी शरणागति की बात आती है तब हम ये सोचते हैं कि अब कुछ करने का नहीं है। यद्यपि जिसको पाना है उसके लिए अब हम अक्रिय न हो

मैं गोस्वामीजी की रोटी खाता हूं; उसके 'मानस' को गाता हूं; उस पर ही जीवन है, फिर भी तुलसीदासजी की कई बातें हैं जिसके साथ मैं सहमत नहीं हो पाता। तो ये मेरी निजता है। इससे तुलसीदासजी नाराज़ नहीं होंगे। तुलसीदासजी को नाराज़ होना नहीं चाहिए। क्योंकि कालांतर में किसी भी बुद्धपुरुष के वचनों को संशोधित करना पड़ता है। तीन वस्तु ही जगत में कभी नहीं बदलेगी। बाकी सब देश-काल के अनुसार बदलना पड़ता है। तीन वस्तु नहीं बदलेगी-सत्य, प्रेम और करुणा। ये अखंड, अनंत, शाश्वत रहेगा। देश-काल के संदर्भ में संशोधन होना चाहिए। तो जिद्द क्यों? धर्म में जब जिद्द आ जाती है तब धर्म का लिबास रहता है, धर्म की आत्मा खतम हो जाती है।

जाये, प्रमादी न हो जाये, इसीलिए तुलसी शरणागति के घाट से कथा का आरंभ करके सीधा प्रयाग में कर्म के घाट पे हमें लिए चलते हैं।

कर्म के बहुत प्रकार है। कर्म, अकर्म, विकर्म। 'गीता' ने भी कितना उसका विभाजन किया! लेकिन शरणागतों का कर्म बहुत विशिष्ट होता है। कोई व्यक्ति किसी बुद्धपुरुष की शरण में पूर्णत: शरणागत हो और फिर वो धंधा, उद्योग, नोकरी भी करता है, कर्म में तो है। लेकिन उसका ये कर्म कर्म की श्रेणियां जो बताई गई है उसमें नहीं गिना जाता। अब ये बौद्धिक जगत उसको कुबूल नहीं कर पाता। क्योंकि बौद्धिक जगत कहेगा कि बुद्धिपूर्वक कर्म किया जाय! लेकिन इतना जरूर कहना पड़ता है कि शरणागतों का कर्म बहुत विशिष्ट होता है। और ये कहने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है कि शरणागतों का कर्म विशुद्ध होता है। शरणागतों के कर्म का फल कभी नहीं लगता। लगे तो जिसकी शरणागति की उसको लगे। आधीनता की विचारधारा का ये नियम है। आश्रित भूल करे तो जिसका ये आश्रित है, उसका जो आश्रयदाता है उसको सहना होता है। इसीलिए शरणागत का कर्म बड़ा विशिष्ट है।

तो तुलसी कर्म के घाट पर कथा पहुंचा देते हैं। ये क्रमश: कथा का प्रवाह बढ़ाती है। वैसे यमुनाजी निकलती है तो कितना छोटा प्रवाह रहा होगा! फिर धीरे-धीरे प्रयाग में इतना विशाल रूप! अब तो यमुनाजी की समस्या देश में है कि यमुना का जल मथुरा तक पहुंचता नहीं है! केवल वैष्णव समाज और आचार्यचरण उसके लिए वो करे ऐसा नहीं, पूरे देश को उसके लिए वो करना चाहिए कि यमुनाजी मूल रूप में मथुरा पहुंचनी चाहिए। लोग कितनी श्रद्धा से यमुना स्नान के लिए जाते हैं! और ये मूलप्रवाह ही न पहुंचे! कुछ जो भारत की जन्मजात आस्थायें है इस आस्था को हानि-लाभ के गणित से मुक्त रख के बरकरार रखनी चाहिए। यदि डेम बन जाये तो भी थोड़ा प्रवाह अनवरत चलना चाहिए।

प्रयाग में आते-आते कथा ने विशाल रूप धारण कर लिया। और प्रयाग जैसी कथा होनी चाहिए। मतलब प्रयाग में सबका समन्वय है। भगवान की कथा को प्रयाग बनाया जाय, तीरथराज बनाया जाय, जिसमें कर्म के सिद्धांत भी हो, ज्ञान के सिद्धांत भी हो और भक्ति के सिद्धांत भी हो। सबका संगम हो। ये आवश्यक है। केवल कथा एक ही जड़ सिद्धांतों में बंधी न रहे। तो ऐसी कथा प्रयाग से आगे कर्म का रूप लेती है। तो बाप! ये तीन प्रवाह जहां मिल जाय, भक्ति का, ज्ञान का और कर्म का, ऐसी कथा प्रयाग से उठी है। याज्ञवल्क्य के पास भरद्वाजजी ने जिज्ञासा की कि रामतत्त्व क्या है? देखो, ये सब संगम हो रहा है। पूछा गया रामतत्त्व और बताया गया शिवतत्त्व। शिवतत्त्व के थ्रू रामतत्त्व की पहचान; ये सब समन्वय है। वैष्णवों और शैवों को जोड़ने की ये अद्‌भुत विद्या तुलसी ने अपनाई।

याज्ञवल्क्य महाराज शिवचरित्र सुनाते हैं कि एक बार त्रेतायुग में भगवान शिव अपनी धर्मपत्नी यानी दक्षकन्या सती को लेकर कुंभज के आश्रम में कथाश्रवण हेतु गये। कुंभज ऋषि शिव का स्वागत और पूजन करते हैं। तो शिव ने सोचा कि ये महात्मा ने कथा को पचाई है। लेकिन सती ने तुरंत गलत अर्थ कर दिया कि इसका जनम ही तो घडे से हुआ है! कथा के परम पावन अध्यात्मप्रवाह को सती जन्म के साथ जोड़ने लगी! शिव सुनते हैं। सती ने सुना नहीं। शिव और सती दोनों कैलास की ओर यात्रा करते हैं। रास्ते में दंडकवन से वो गुज़रे। त्रेतायुग का रामअवतार वर्तमान था। भगवान की ललित नरलीला चालू थी। सीताजी का अपहरण हो चुका था। भगवान राम सीता की खोज में रो रहे थे। और उसी समय शिव और सती निकले। 'हे सच्चिदानंद! हे जगपावन' कहकर भगवान शंकर दूर से प्रणाम करके आनंद में डूब गये। सती को शिव की ये दशा देखकर संदेह हुआ। शिव सती को कहते हैं कि देवी, संदेह न करो, आप का नारी स्वभाव है। लेकिन सती नहीं मानी और फिर शंकर ने निर्णय कर लिया।

होहि सोई सो राम रुचि राखा।
को हरि तर्क बढ़ावै सारवा।।

मैंने कई बार आपको कहा है, फिर याद दिलाउं। कोई ऐसी घटना घटे तो शिव ने जो किया वो कृपया जीव करे। शिव की तरह वर्तन करना चाहिए कि मैंने मेरा कार्य पूरा किया फिर भी बात समझ में नहीं आई, अब परमात्मा ने सोचा होगा वो ही होता होगा। मैं क्यों अब तर्क-वितर्क करूं? और ऐसा कहकर निष्क्रिय हो जाना? नहीं। तुलसी ने एक ओर बात भी बता दी। इतना निर्णय कर भगवान शंकर हरिनाम लेने लगे। मेरे भाई-बहन, घर में खट-मीठी होती रहती है लेकिन जिसकी जिम्मेवारी है वो पूरे प्रामाणिक प्रयास करके कहे, फिर भी कोई न माने तो फिर हरि पर छोड़ दो और खुद हरिनाम लेना शुरू कर दो। और भगवान शंकर हरिनाम लेते हैं। सती परीक्षा करने के लिए जाती है। हम भी हरिनाम लेकर आज की कथा को विराम दें।

मानस-जमुना : ४

गंगा सत्य देती है, यमुना प्रेम देती है और सरस्वती करुणा देती है

'मानस-जमुना', जिसकी सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में हो रही है। कुछ आगे बढ़ें। कुछ जिज्ञासायें है। ''आपने कल कथा में बताया कि कथा में तो कोई भी आ सकता है। लेकिन भक्ति तो इसीको मिल सकती है जो अधिकारी है। तो बापू, आप ये कहेंगे कि अधिकारी के लक्षण क्या हैं?'' दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी है। एक तो भक्ति का अधिकारी वो है जिसमें अहंकार की मात्रा कम हो। अहंकार जीव का स्वभाव है इसीलिए पूर्णत: मिटना तो परमात्मा की कृपा पर आधारित है। लेकिन जितनी अहंकार की मात्रा कम हो। आप सोचिए, शिव कथा सुनाने आये और कुंभज गानेवाले थे, फिर भी कुंभजऋषि ने उसके चरण धोये, पूजा की। ये कुंभज की निरहंकारिता का प्रमाण है। इसीलिए शंकर ने देखा कि इसको भक्ति का अधिकार है, 'कहि संभु अधिकारी पाई।' एक, अहंकार की मात्रा जितनी कम हो। अहंकार बिलकुल न हो ऐसा निवेदन मैं औरों की तरह नहीं करूंगा। क्योंकि अहंकार न हो ऐसा बोल जाना तो बहुत आसान है। लोग कैसे भी बोल देते हैं! शे'र सुनिएगा -

जिसको दर्दे अहसास नहीं होगा।
संग होगा, वो सनम नहीं होगा।
- मुनव्वर राणा

तो बाप! अहंकार की मात्रा जितनी कम हो। अब क्या कुंभज को अहंकार नहीं आ सकता कि मैं घडे जैसा और ये कृपासागर! आज एक घडे के पास एक समंदर आया! अहंकार आना चाहिए था। लेकिन नहीं आया। तो हो गया वो भक्ति का अधिकारी। दूसरा, भक्ति का अधिकारी वो है जिसको जीवन में किसी से कोई अलंकरण की इच्छा न हो कि मुझे कोई 'संतशिरोमणि' कहे, भक्तिवान कहे। जगत के किसी भी अलंकार या तो अलंकरण की जिसके मन में सपने में भी कभी इच्छा न हो वो भक्ति का अधिकारी है। ज्यादा तो भक्ति के अधिकारी को प्रसंशा नहीं मिलती, गालियां ही मिलती है! और गालियां अपनेवाले ही देते हैं! एक शे'र ओर सुनिए -

उसे बचाये कोई कैसे टूट जाने से?
वो दिल जो बाज़ न आये फ़रेबखाने से।

लोग छलते जाये, छलते जाये फिर भी जानबूझ कर जो छला जाय, छला जाय! उसको टूटने से कौन बचा सकता है?

वो एक सख्श तो एक ही लम्हे में टूट-फूट गया।
जिसको तराशा था मैंने एक ज़माने से।

कईयों को दस साल से, कईयों को बीस साल से, कईयों को चालीस साल से मेरी व्यासपीठ ने तराशा! वो एक सख्श एक ही लम्हे में टूट-फूट गया! बुद्धपुरुषों का काम क्या है? हमें तराशना। कोई गुरु नहीं चाहता कि मेरे चरणों में कोई शीश झुकाये लेकिन दुनिया के सभी गुरुओं ने ये सिलसिला चालू रखा है क्योंकि ये सिर झुकाना है अहंकार को कम करने की प्रक्रिया। और अधिकारी वो है, किसी पर अपना अधिकार न बताये। जिसके पास बहुत ज्ञान है इसका मतलब ये नहीं कि इसके पास भक्ति भी है। लेकिन ज्ञान होने के बाद जो अपना अधिकार, मैं ज्ञानी, मैं पंडित, मैं बुद्धिमान, ऐसा किसी पर जताना छोड़ दे तो धीरे-धीरे वो ज्ञानी भी भक्ति का अधिकारी होने लगता है। अधिकार होते हुए भी कभी अपने आश्रित पर अधिकार न जतायें वो भक्ति का अधिकारी है। सच्चा बुद्धपुरुष वो है, गुरु वो है, सद्‌गुरु वो है जो चाहे तो अपना अधिकार ईश्वर पर भी जता सकता है। लेकिन अपने आश्रितों पर अधिकार का उपयोग न करे ये है भक्ति के अधिकारी। और चौथा और आखिरी सूत्र, जिस पर मेरा पूरा बल रहता है, जो कभी भी किसी का द्वेष न करे। बहुत बड़ा बाधक है मेरे भाई-बहन! भक्ति का प्रवाह रुक जाता है जब द्वेष शुरू हो जाता है! रूपया छोड़ने की जरूरत नहीं है; पत्नी, बच्चों को भी छोड़ने की जरूरत नहीं है; जगत छोड़ने की जरूरत नहीं है; द्वेष छूटे।

हां, वो पांच जो स्वाभाविक दोष श्रीमन् महाप्रभुजी ने बताये ये पांचों में इसके स्वाभाविक गुण भी तो है। जैसे कल महाप्रभुजी की अमृतबानी का हम सब पान कर रहे थे कि एक तो दोष है महाप्रभुजी की बोली में 'सहज।' कई लोगों में देखोगे, उसको पता ही नहीं कि झूठ बोलना दोष है, लेकिन ये सहज बोलते ही रहते हैं! उसको पीड़ा होती तो झूठ छूट जाता। मैंने कई लोगों को पूछना ही छोड़ दिया क्योंकि वो मुझको झूठ ही मार्गदर्शन देते हैं! और साहब, रिस्ट वोच समय गलत दिखाये तो तुम एक ही ट्रेइन चुक सकते हो, लेकिन नगर की घड़ी टाईम गलत बताये तो पूरा ज़माना अवसर चुक जाता है। इसीलिए किसी बुद्धपुरुष को झूठ बोलकर गलत मार्गदर्शन न करना! वो तुम्हारे भरोसे बैठा है। कई लोग सहज निंदा करेंगे! और मुझे तो कितना मुश्किल पड़ता है कि विषयांतर कब करूं? मुझे मौका मिले तो विषयांतर कर दूं ताकि मेरे सामने ये झंझट बंद हो!

तो आदमी में कभी-कभी निंदा, ईर्षा, द्वेष ये सहज है। तो जैसे सहज दोष होते हैं ऐसे कई लोगों के सहज गुण भी होते हैं। मैं 'गुण' शब्द ज्यादा नहीं पसंद करता हूं, 'स्वभाव' पसंद करता हूं। कई लोगों में आप देखिएगा, उसकी सरलता सहज होती है। कई लोगों को देखकर आपकी आत्मा ही कहेगी कि इस आदमी के मन में किसी के प्रति कुटिलता हो ही नहीं सकती। युवान भाई-बहन, खूब पुरुषार्थ करो, लेकिन प्रामाणिक पुरुषार्थ के बाद जो मिल जाये उसमें एक संतुष्टि, एक डकार कि मालिक ने बहुत दिया। तो जैसे महाप्रभुजी कहते हैं, सहज दोष है वैसे सहज गुण भी होते हैं। स्पर्शज दोष जो उसकी चर्चा हमने कल की। कोई ऐसी व्यक्ति का स्पर्श हो तो हम में उसके कुछ लक्षण आने लगते हैं। स्पर्श बहुत काम करता है। कौन कहता है, स्पर्शज केवल दोष ही है? भगवन् ने द्वार खोल दिये हैं। 'परसत पद पावन सोक नसावन।' आप कल्पना तो करो, ठाकुर ने अपने चरण का अहल्या को स्पर्श न करवाया होता तो अहल्या अभी भी बक्सर में पड़ी रहती! कोई बुद्धपुरुष हमारे सिर पर हाथ रख दे। स्पर्श की बड़ी महिमा है। एक बहुत बड़ी, हम को पता न हो ऐसी ऊर्जा प्रकट होने लगती है। 'नेत्र दीक्षा', 'संकल्प दीक्षा', वैसे एक दीक्षा का नाम है 'स्पर्श दीक्षा।' स्पर्श तो हनुमान के सिर पर हुआ, कथा रुक गई कैलास पर! बच्चा माँ को अपनी दो बस्तु से पहचानता है। माँ के स्पर्श से और माँ की अपनी एक गंध होती है, इससे बच्चा उसको पहचानता है। डोक्टर लोग भी कुबूल करते हैं। स्पर्श के बहुत स्वाभाविक गुण है साहब! स्पर्श बहुत-सी ऊर्जाओं का उद्‌घाटन करता है। इसीलिए मेरे देश में अध्यात्मजगत में चरणस्पर्श की महिमा आई है।

'देशज।' देश के कारण ऐसी भूमि में रहने कारण कुछ दोष आ जाता है, वैसे देश के कारण कुछ गुण भी प्रकट होते हैं। जैसे कल भी हम बात कर रहे थे कि जितनी-जितनी ऊंचाई पर आदमी जाता है इतने-इतने उसके विचार कम होने लगते हैं। ये नियम है। एक स्थान की भी महिमा है।

देखि परम पावन तव आश्रम।
गयउ मोर संसय नाना भ्रम।।
उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला।
तहँ रह काकभुसुंडि सुसीला।

और मैं एक बात और भी आपके सामने खोलूं कि मेरे दादा के पास मेरा 'रामायण' का अभ्यास शुरू होता था तो हमारा मंगलाचरण ये चौपाई रहता था। डेईली; ये कायम का क्रम था। जब दादा आगे की चौपाई सिखाये इससे पहले कहे, पहले नीलगिरि को याद कर लें। दादा का अपनी चौपाई का राग था, वो मैं ज्यादा गा भी नहीं पाता! वो भी थोड़े वो हो जाते थे तो बोलते, तू गा ले! ये दो पंक्ति पहले गाई जाय, फिर जहां से 'रामायण' का अभ्यास रुका है वहीं से फिर शुरू होता था। ये हमारा श्रीगणेश था। अब मेरी समझ में आता है कि मुझे क्यों ये 'उत्तर दिसि' की ऊंचाई पर ले चलते थे। क्यों? लेकिन कोई संकेत था। और आदमी जितनी ऊंचाई पकड़ता है, विचार कम होते जाते हैं। और भुशुंडि को इसीलिए दादा ने पसंद किया मंगलाचरण में कि भुशुंडि एक ऐसा बुद्धपुरुष है बेटा कि उसने बहिर्ब्रह्मांड भी पूरा देखा और आंतर्ब्रह्मांड भी।

'कालज।' कोई ऐसे लम्हें, 'एक घडी आधी घडी, आधी पे पुनि आध।' कुछ ऐसे लम्हें आ जाते हैं तो कितनी ऊर्जा प्रकट हो जाती है! तो 'कालज' ये भी काम कर सकता है। ज्योतिष में मेरी कोई रुचि भी नहीं, लेकिन जिन ऋषिमुनियों ने ये सब निकाला है कि ये मुहूर्त, ये मुहूर्त, ये कालज संकेत पकड़ने का मुहूर्त है। बाकी तो हरिनाम लेकर कोई भी काम शुरू करो। लेकिन विज्ञान तो है। और तुलसी बहुत प्रेक्टिकल है, तुलसी बहुत एडवान्स है। पांचवां गुण प्रकटनेवाला 'संयोगज', सोबत, अच्छी सोबत आदमी को कहां से कहां ले जाती है! आप कथा की सोबत कर रहे हैं तो आप भी कहीं से कहीं पहुंचे हैं। कम से कम एन्जोय तो कर रहे हैं। जैसे खराब संयोग से, खराब संग से आदमी बिगड़ जाता है। संग से भी बहुत अच्छाईयां मिलती है। ये संत का संग ही नहीं, 'संत' शब्द आते ही लोगों को धार्मिक वातावरण नज़र में आने लगता है। संग यानी कोई भी अच्छे आदमी का संग, अच्छा फ्रेन्ड, अच्छा सोचनेवाला कोई भी व्यक्ति का संग अच्छाईयां प्रकट करने में हमें मदद करता है।

तो जहां श्रीमन् महाप्रभुजी ने ये सहज और इतने दोष जहां बताये हैं उसके सामने उसकी कृपा से हम ये भी सोच सकते हैं कि इन पांचों से अच्छाईयां भी प्रकट हो सकती है। क्यों हम हकारात्मक सोच न लें? वसीम बदायूंसाहब के कुछ शे'र है, मैं ले आया हूं -

वक्त ने ऐसी ठोकर मारी।
सीधी हो गई चाल हमारी।
चादर है कमजोर हमारी।
कैसे निभाये रिस्तेदारी?

तो श्री भरतजी प्रयाग पहुंचे हैं। श्वेत गंगा, अश्वेत यानी काली यमुना में सब पुरवासियों ने स्नान किया। और यमुना के काले हिलोरे और गंगा के धवल हिलोरे को देखकर कहते हैं-

मागउँ भीख त्यागि निज धरमू।
आरत काह न करइ कुकरमु।।

क्षत्रिय का बेटा हूं, राजकुमार हूं, मेरा धर्म भीख मांगने का नहीं है। मेरा संकेत जमुनाजी की ओर है। और मुझे कहने दो, गंगा सत्य देती है, यमुना प्रेम देती है और सरस्वती करुणा देती है। ये है मेरी प्रस्थानत्रयी। ये तीनों संमिलित है। ये त्रिवेणी के तट पर भीख मांग रहा है एक राजवी भिक्षुक एक कांसा लिए हुए। यदि भीख भी मांगनी है तो समर्थ के द्वार पर मांगना। कंगालों की दाढी में हाथ मत डालना। मांगो तो बुद्धपुरुष से मांगो जिनके पास छओ हो, ऐश्वर्य हो, यश हो, जो वीर्यवान हो, जो विक्रम हो, जिनके पास श्री हो, ज्ञान हो, वैराग्य हो। इसको मैं सद्‌गुरु भगवान कहता हूं।

मेरे दादा मुझे जब 'रामायण' पढ़ाते थे तब वो मुझे सद्‌गुरुदेव लगते थे। लेकिन जब दादा का ये अकिंचन ऐश्वर्य देखता था तब मुझे लगता था कि ये मेरा सद्‌गुरु

भगवान है। और 'उत्तरकांड' की इस पंक्ति, 'उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला।' ये पंक्ति से जब 'रामायण' का अध्ययन शुरू होता था तब मुझे लगता है कि मेरा बुद्धपुरुष एक कोने में बैठा है। ये मेरी अनुभूतियां है। दादा के पास छहो थे। ऐश्वर्य दो प्रकार के होते हैं। एक लौकिक ऐश्वर्य, एक अलौकिक ऐश्वर्य। लौकिक ऐश्वर्य नाशवंत होता है, अलौकिक ऐश्वर्य शाश्वत होता है। वो था। किस रूप में? ये हमारा छोटा-सा घर। पिताजी से बड़े भैया वनमालीदास बापू मुंबई रहते थे। वहां थोड़ा कुछ कमाके उसने एक मकान तलगाजरडा में बनाया तो दादा वहां सोने को रखते थे। दादा का वहीं से आना, हमारे मूल घर में आना, रोटी खाना, रामजी मंदिर के ओटे पर बैठना। घूघा की वाडी; वहां स्नान करने जाना। इतनी ही भूगोल थी दादा की। मैंने कभी इस भूगोल से इस महापुरुष को बाहर नहीं देखा है। यही थी उसकी परिकम्मा। लेकिन मैंने मेरी बाल आंखों से देखा है। जब आते थे तो बैलगाडा सामने से आये न, गाडा हट जाये! त्रिभोवनदासबापू निकले हैं! पनिहारियां पानी भरके निकले, गलियों में छिप जाये! बच्चे खेलते हो गिल्लीदंडे से, एक ओर रुक जाये। एक नेमचंद जैन वणिक थे, हमारे गांव में उसकी एक दुकान थी। दादा वो बहुत आग्रह करे तब वहीं जाते थे। और जाते थे तब मैंने अपनी बाल आंखों से देखा है, सब दुकानदार खड़े हो जाते थे! ये था ऐश्वर्य। ये था अकिंचन ऐश्वर्य!

यश; यश का तो क्या कहे? जिसको कोई कीर्ति का मोह न हो उसकी कीर्ति की महिमा कौन गाये? आज उसकी लौकिक कीर्ति नहीं, अलौकिक कीर्ति का हम अनुभव कर रहे हैं। बस्तुओं का होना ऐश्वर्य नहीं है। बस्तुओं के प्रति बिलकुल वैराग ये परम ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य, यश, आत्मबल। गज़ब का आत्मबल। मैं एक ही आत्मबल की बात करूं। बहुत जनम की सुधी मानो आ रही है ऐसा लगता है! आप भी तो बार-बार पूछते हैं कि दादा की कुछ बातें सुनाईएगा, कुछ बातें सुनाईएगा। आपको अपना समझकर सुना रहा हूं। बड़े पिताजी मुंबई थे। विष्णुदेवानंदगिरि कैलास पीठाधीश्वर मुंबई माधवबाग में 'गीता' पर प्रवचन कर रहे थे। खबर आई तो दादा ने पिताजी प्रभुदासबापू को कहा कि दर्शन करने के लिए जाना हो तो मुंबई हो आ। पिताजी गये। दादीमाँ तो निर्वाण पा चुकी थी। एक दिन के बाद माँ सावित्री माँ जो घूंघट रखती थी। दरवाजे की आड में खड़ी रहकर मुझे कहा, बेटे, दादा को पूछो कि आटा नहीं है। दादा के शब्द; उसी के ही शब्द, बेटा, तेरी माँ को कह दे कि जब तक साधु के पास तांबडी है न, तब तक उसके पास अक्षय पात्र है। ये था उसका आत्मबल! और फिर हमने इस अवसर के बाद देखा कि कभी कमी महसूस न की।

सुदर्शनचूर्ण के डिब्बे आते थे पहले और हमारे घर में औषधि तीन रहती थी। पूरा गांव वहां लेने आते थे। सुदर्शनचूर्ण, हिंगाष्टकचूर्ण और अमृतांजन बाम। ये रहता था। साहब! ये मैं कैसे आपको समझा सकूं! हमारे घर मेहमान बहुत आते थे दादा के कारण। मैं आपके पास दिल की बातें कर रहा हूं, इतने डिब्बे में कभी धाणाजीरु खतम नहीं हुआ है! यानी लाये जाते थे लेकिन मुझे लगा कि ये हिंगाष्टक के डिब्बे नहीं है, ये अक्षयपात्र है। ये एक आत्मबल के वचन पर ये हुआ था कि जब तक हमारे पास ये शब्द है 'भजले राम', तब क्यों चिंता?

तो था ऐश्वर्य; था यश; था आत्मबल; थी श्री। श्री मानी एक आभा। आपने तो प्रत्यक्ष नहीं देखे हैं, मैंने देखा है। एक श्री एक ओर एक आभा। मैंने अपनी आंखों से देखी है। और साहब, भगवद्कृपा हो न तो गुरु को खोजने जाने की जरूरत ही नहीं, घर में ही मिल जाता है। श्री से संपन्न थे। जैसे मैने इस कथा में ही कहा कि मेरे लिए ये पघडी नहीं थी, शंकर की जटा थी, जहां से गंगधारा बहती थी। तो थी श्री। ज्ञान का तो क्या कहूं मैं? उसी के दिये हुए बोल तो आपके सामने बोल रहा हूं! वैराग; जीवन में कभी साबुन का उपयोग नहीं किया है। उसके कपड़े खुद धोते थे और लाल हो जाते थे कपड़े! आप रामवाडी जाते हैं न तो बीच में एक कुआ था, वो ही कुए पर दादा का स्नान रहता था। श्रीमन् महाप्रभुजी का वैष्णवी वैराग्य, वल्लभी वैराग्य की व्याख्या वो है, तुम्हें कुछ छोड़ना नहीं है; तुम्हारे पास जो है वो ठाकोरजी की सेवा में समर्पित करना है। उसको कहा है वल्लभी वैराग्य। भागना नहीं।

ये भगवानपना। मुझे हमारे कई संतों ने पूछा भी था कि आपने सद्गुरु के साथ 'भगवान' शब्द क्यों जोड़ दिया? तब मैंने ये रहस्य नहीं कहा था। मैं कैसे कहूं लेकिन आज यमुनोत्री में मुझे लगा, मैं आपको बताउं कि ये कैसा भगवान था? आजानबाहु थे। तो 'रामायण' की चौपाई देते थे तब मुझे सद्गुरु गुरुदेव लगते थे। ये सब छ प्रकार का 'भग' देखता था। ये छ जिसमें हो उसको आप भगवान कह सकते हैं। किसी ने भी हाफ पेन्ट पहना हो न इसीमें भी छः वस्तु आप देखो कि श्री हो, यश हो, ऐश्वर्य हो, ज्ञान हो, वैराग्य हो, आत्मबल हो तो ये भगवान हो सकता है। किसी के लिए आप 'भगवान' शब्द यूझ कर सकते हैं जहां ये छ बिलकुल आरपार दिखाई देते हो। और जब 'उत्तरकांड' की वो चौपाई से मेरा अध्ययन शुरू होता था, मुझे लगता था कि उत्तरदिशि में बैठे कोई तलगाजरडा आया है मुझे पढ़ाने के लिए! सबकी अपनी-अपनी निष्ठा होती है साहब! सब अपना-अपना नाता रखता है।

कल मुझे पूछा गया कि बापू, आपने कहा कि गुरु के-साधु के पंच मुख और आश्रित गुरु को कैसे पहचाने?

चार वस्तु ध्यान रखना, युवान भाई-बहन खास। आश्रित को कैसे पता लगे और सच्चा आश्रित कैसे हुआ जाय कोई ऐसा साधु जो पंचमुखी हो। गुरुमुख हो, वेदमुख हो, गोमुख हो, सन्मुख हो, अंतर्मुख हो। पहले, आपमें और उनमें ऐसे बुद्धपुरुष के आश्रित हम हो जाये ऐसी चाह हो तो पहला कदम है हमारे लिए कुतूहल। कूतुहल पैदा होना चाहिए कि हो क्या रहा है? मैं निमंत्रित करता हूं कि कथा में कुतूहल से आईए। और कई लोग ऐसे हैं मेरे श्रोता कि कुतूहल समझकर उसकी पहली ऐन्ट्री हुई है कथा में। तो मेरा ये जो दर्शन है वो ये है कि कुतूहल आदमी में जगना चाहिए। तो आप कुतूहल से यात्रा आरंभ करे तो समझना ये एक पहला पड़ाव है। और दूसरा पड़ाव है विस्मय। कुतूहल और विस्मय में अंतर है। कुतूहल का स्तर थोड़ा नीचा है, विस्मय थोड़ा उपर है। पहले तो हम कुतूहल से जाते हैं। फिर कुछ अपनी नज़रों से देखने के बाद लगता है, विस्मय होता है कि ये क्या है! पहले ही कदम पर किसी का आश्रित मत बन जाना। कुतूहल भी आपका होगा, आपके स्तर का होगा। मेरा होगा, मेरे स्तर का होगा। और विस्मय तक पहुंचने के बाद भी किसी के चरण मत पकड़ लेना। तीसरा कदम विचार है। कुतूहल ने आपको एन्ट्री दी। अंदर जाके देखा तो विस्मय पैदा किया। लेकिन बिना सोचे आगे मत बढ़ना। आदमी में विचार जीवंत होना चाहिए। कोई भी व्यासपीठ आपके विचार का खून कर दे ऐसी व्यासपीठ पर मत जाना। वो व्यासपीठ नहीं है, खडपीठ है! तथाकथित धर्मवादियों ने हमारी सोच ही काट दी! शरणागति के नाम पर हमको इतने मार डाले गये हैं कि सोचना क्या है? शरणागति अंतिम पडाव है। विचार का सन्मान होना चाहिए। विचार हंस है। विचार को गालियां मत दो। विचार को गाली देना वो हंस को गाली देना है। बिलकुल निर्भार पक्षी होता है हंस। विचार भी निर्भार होना चाहिए। विचार अपने बारे में करना, दूसरों को देखदेख कर मत करना। ये सब उधार है। ध्यान देना, कौए का वजन हंस के वजन से ज्यादा होता है। उसकी पांखें मोटी भी होती है। जो जीवन में नाजुक होते हैं, मासूम होते हैं, निर्दोष होते हैं, वो ही हंस होते हैं। वो ही तैर सकते हैं। पानी पर नर्तन करते हैं। परमात्मा ने सबको बिलग-बिलग शक्तियां दी है। नकल न करो। अपनी खुद की शक्ति पर आनंदित होओ। तो ये हंसत्व जो है ये निर्भार

श्री भरतजी यमुना के काले हिलोरे और गंगा के धवल हिलोरे को देखकर कहते हैं, क्षत्रिय का बेटा हूं, राजकुमार हूं, मेरा धर्म भीख मांगने का नहीं है। और मुझे कहने दो, गंगा सत्य देती है, यमुना प्रेम देती है और सरस्वती करुणा देती है। ये है मेरी प्रस्थानत्रयी। ये तीनों संमिलित है। ये त्रिवेणी के तट पर भीख मांग रहा है एक राजवी भिक्षुक एक कांसा लिए हुए। यदि भीख भी मांगनी है तो समर्थ के द्वार पर मांगना। कंगालों की दाढी में हाथ मत डालना। मांगो तो बुद्धपुरुष से मांगो जिनके पास छओ हो–ऐश्वर्य हो, यश हो, जो वीर्यवान हो, जो विक्रम हो, जिनके पास श्री हो, ज्ञान हो, वैराग्य हो। इसको मैं सद्गुरु भगवान कहता हूं।

होता है। धर्मजगत को चाहिए आदमी को विचार करने की छूट दे।

तो पहले हो कुतूहल। उसके बाद हो विस्मय। लेकिन विचार की हत्या न हो। और चौथा चरण है आश्रित का विश्वास। लेकिन उसी विश्वास का मैं स्वागत करता हूं जिस विश्वास का दरवाजा विचार खोलता हो। विचार के बाद सोचने के बाद आपको लगे कि नहीं, अब यहां भरोसा करने जैसा है। और वहां जो पहुंच गया उसको फिर कुछ बाकी नहीं रहता। थिंक ट्वाईस। दो बार सोचो। तीन बार सोचो। अगेईन, अगेईन विचार होना चाहिए। और विचार ही कहे बस, अब जाओ। जिस विश्वास का दरवाजा विचार खोले वो ही है गुरुगृह; वो ही है गुरुद्वार। यात्रा कुतूहल से, थोड़ा आगे विस्मय, उसके बाद विचार और हमारे विचार ही कहे कि नहीं, बहुत हो गया। विचार हमारा सहयोगी बने कि अब सोचना बंद कर ले, मैं तेरे द्वार खोल देता हूं। और द्वार जब विचार खोल दे तब आश्रित को गुरुद्वार की उपलब्धि हो जाती है। फिर वो ऐसा स्थान है कि तुम भटको और न आओ तो उसको बैठे रहना पड़ता है कि जाएगा कहां? जो मेरा है। बदायूं का एक शे'र है, बड़ा प्यारा शे'र है -

तेरे जैसा मिला ही नहीं।
कैसे मिले, कहीं पे था ही नहीं।

बेनमून, अद्वितीय। वो है गुरुद्वार। वो है विश्वास। वो है आश्रित का वैकुंठ। वो है आश्रित का गोलोक। वो है आश्रित का परमधाम।

अनंतगुणभूषिते शिवविरंचिदेवस्तुते।
घनाघननिभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे।।
विशुद्ध मथुरातटे सकल गोपगोपीवृते।
कृपाजलधिसंश्रिते मम मनः सुखं भावय।

तीसरा श्लोक है 'यमुनाष्टक' का जिसमें यमुना महाराणी का विवाह मानो रचता हो। चौदह साल के महाप्रभुजी शृंगार रस का वर्णन कर रहे हैं। लेकिन फिर यमुनाजी का जो ऐश्वर्य, महिमा का गायन आगे के श्लोक में जो है। और मेरी ये ('मानस') यमुना है इसमें भी ये चौथे श्लोक में जितने लक्षण है ये सब लक्षण है। यमुना महाराणी का 'यमुनाष्टक' गाते श्रीमन् महाप्रभुजी भगवान वल्लभ कहते हैं कि हे यमुनाजी, आप अनंत गुणभूषिते है। और ये 'रामचरित मानस'रूपी यमुना में भी 'अनंत गुण भूषिते' होना चाहिए।

हरि अनंत हरि कथा अनंता।
कहई सुनहि बहु बिधि सब सेना।।

हे यमुनाजी, शंकर और ब्रह्मा इतने महान देव तेरी स्तुति करते हैं। अवश्य, शंकर यमुनाजी की स्तुति करते हैं। हलाहल विष पीने के बाद भगवान शंकर को अंदर की जो अग्नि थी; अंदर तो नहीं उतरा था। लेकिन विष, विष का काम करता था। उपर शीतल गंगा है, लेकिन गंगा के शैत्य ने भी उस अग्नि को शांत नहीं की। महादेव के कंठ में झाल लग रही है विष की! और गंगाजी अपने भगवान को पूछती है प्रभु, आप आज बहुत व्याकुल है? बोले, ज़हर पीने के बाद मेरे गले में इतनी अग्नि है! तू सिर पर है लेकिन ये अंदर की अग्नि शांत नहीं हो रही है। तो बोली, मैं तो उपर बहती हूं। अब थोड़ा यमुनाजल पी लो तो आग बंद हो जाएगी। मेरे महादेव ने यमुनाजल लेकर पान किया और नीलकंठ का दाह समाप्त हो गया। और जो डोक्टर हमारी बीमारी खत्म कर दे उसका प्रचार मरीज़ खुद करता है।

'रामायण' यमुना है। और 'रामायण' की व्याख्या क्या है? राम की गति, राम का प्रवाह, उसका नाम है 'रामायण।' तो प्रवाह है तो राम भी यमुना है, 'रामायण' भी यमुना है। और इस यमुना महाराणी की स्तुति महादेव ने की।

दूसरा नाम ब्रह्मा का आया। ब्रह्मा यमुनाजी की स्तुति करते हैं। अद्भुत स्तुति करते हैं! ब्रह्मा ने स्तुति की 'लंकाकांड' में, जब लंकाविजय हो गया। ब्रह्मा बोले, मैं ब्रह्मा हूं, मेरे से अच्छे तेरे ये बंदर है। क्योंकि ये आपका चेहरा निरंतर देखते हैं। तो,

अनंतगुणभूषिते शिवविरंचिदेवस्तुते।
घनाघननिभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे।।

यमुनाजी क्या करती है? घनाघन; घनाघन का एक अर्थ होता है कृपा की वर्षा कर देना। 'रामायण' की यमुना की कृपा से ध्रुव अमरत्व पा गया। इसी तरह ध्रुव और पराशर को अभीष्ट वरदान देनेवाली यमुना है।

विशुद्ध मथुरा तटे सकल गोपगोपीवृते।
क्रिया जलधि संश्रिते मन मनः सुखं भावय।।

यमुना के प्रवाह के तट पर मथुरा निवास करती है इसीलिए मथुरा विशुद्ध है। और विशुद्धता कई जगह लगाई जाती है। साधु के लिए भी 'संत विशुद्ध मिलई...' लेकिन ज्ञान को विशुद्ध कहा है। तेरे तट पर जो निवास करे उसको विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। और 'रामचरित मानस' की जमुना के तट पर भी जो जाएगा, इस घाट पर भी जो जाएगा वो भी विशुद्ध समझ प्राप्त कर लेता है। और 'सकल गोपगोपीवृते...' 'रामचरित मानस'रूपी जमुना जहां जाती है वहां भी 'सकल गोप गोपीवृते।'

मुझे अच्छा लगता है कि महाप्रभुजी 'यमुनाष्टक' में गोप को याद कर रहे हैं। वर्ना गोप को भूला दिया गया! केवल गोपी ही आगे निकल गई! वो बेजूबां गोप जिन्होंने कृष्ण से महोब्बत की। गोपी और कृष्ण को विग्रह के रूप में देखो तो आकर्षण स्वाभाविक है। एक स्थूलभाव में भी विजातीय होने के कारण आकर्षण स्वाभाविक है, लेकिन गोप? कभी कह भी नहीं पाये कि कृष्ण, तेरे प्रति हमारा कितना आकर्षण है! और नंद भी तो गोप है। पुरुष की पीड़ा जानी नहीं गई। पुरुष बहुधा दंड़ित होता गया। मैं भरत की प्रयाग की बात कहने जा रहा था वो तो छूट गई। लेकिन वहां भरतजी एक पंक्ति कहते हैं -

जानहि राम कुटिल करि मोहि।
लोग कहे गुरु साहिब वो ही।।

लेकिन,

सीताराम चरण रति मोरी।
अनुदिन बयउ अनुग्रह तेरी।।

ये जो प्रेम की भीख मांगी है निरंतर ये भीख उसने जमुनाजी से मांगी है। गंगा मुक्ति देती है, यमुना भक्ति देती है। और भरत को चाहिए न मुक्ति, न अरथ, न धर्म, न काम। और उस समय भरत की त्रिवेणी से प्रकटी है वाणी। भरतजी कहते हैं, हे यमुनाजी, भगवान राम भले मुझे कुटिल समझ ले और ये लोग जो है वो मुझे स्वामी और गुरुद्रोही कह दे, कोई चिंता नहीं। लेकिन हे त्रिवेणी मैया, मेरी एक ही मांग है -

सीताराम चरण रति मोरे।
अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे।।
जलद जनम भरि सुरति बिसारी।
जाचत जल जपबि पाहन डारो।।

इस पंक्ति पर दादा ने मुझे बहुत समझाया है। कठिन से कठिन पंक्तियों में से एक है। जहां गुरुमुख के सिवा कल नहीं पड़ती। जलद मानी मेघ बादल, जनम भर बरसना भूल जाय कि कोई चातक भी है, मुझे उनके लिए बरसना चाहिए। और बेचारा चातक चाहे कि पानी बरसो, कृपा करो। हम उससे कृपा मांगे और वज्र फेंके, कठोर बन जाये, हमें सोने की तरह तपा दे लेकिन हमारी एक ही मांग रहेगी कि हमारा प्रेम उनके चरणों में बढ़ता रहे। वो भूल भी जाये। मुझे लगता है प्रेम की ये चरम व्याख्या है, वो भूल भी जाये।

तो, 'रामचरित मानस'रूपी जमुना इन सबका स्मरण कराती है। तो बाप! जहां रामकथा की जमुना बहती है वहां गोप-गोपी, सखा-सखी ये सब वर्तुल जम जाता है। तो मैं आपसे निवेदन कर रहा था कि सखाओं को कम याद किया गया है। महाप्रभुजी को मैं अनेक बार दंडवत् करूं कि उसने 'सकल गोपगोपीवृत्ते...' सखाओं को याद किया। अब तो समय बदल गया लेकिन एक समय था, चैतन्य के काल का समय था, उस समय वृंदावन के वृक्ष को काटा नहीं जाता था। क्योंकि क्या पता श्रीदामा खड़ा हो! क्या पता कोई कृष्ण सखा खड़ा हो! और किसी संत की कथाओं में आता भी है कि किसी ने एक डाली काटी थी तो लहू निकलने लगा था! और कृष्ण और राधा, कृष्ण और गोपीजन में भी गोपीजन की प्रेम की ध्वजा फ़हरी है। कृष्ण की मनोवेदना कम समझ में आई है। सदैव गोपों की यही दशा रही है। 'कृपाजलधि संश्रिते...' कृपाजल बरसाती है जमुनाजी। और सबसे बड़ी मीठी बात, मुझे प्रिय बात, 'मय मन सुखं भावय।' हे यमुनाजी, ऐसा सुख दे जो मेरे मन को भावे। ये अधिकार है मांगने का। लेकिन यहां, 'मम मन सुखं भावय।' मैं चाहूं ऐसा है। और तुलसी की ये जमुना ('मानस') में भी यही बात आई है कि-

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।।

विचारों का सत्य, उच्चारों का सत्य और आचरण का सत्य ही महादेव का त्रिपुंड है

'मानस-जमुना', जिसके बारे में हम मिलकर के संवाद कर रहे हैं। गोस्वामीजी कहते हैं, यमगणों के मुंह पर कालिमा पोतनेवाली रामकथा स्वयं यमुना है। जीते ही मुक्ति देनेवाली ये काशी है। कल की चर्चा में भी बहुत-सी जिज्ञासाएं है, उसका आश्रय करते चलूं। 'बापू, कल आपने कहा कि साधक को विचार कम होना अच्छी अवस्था है।' जैसे साधक का उर्ध्वगमन होता है, विचार अपनेआप कम होने लगते हैं। और ये अच्छी अवस्था है उस संदर्भ में पूछा गया कि 'बापू, आप कहते हैं कि विचार कम होना अच्छी अवस्था है और ये भी कहते हो कि विचार में जीना चाहिए। ये दोनों में क्या राज़ है?' विचार करना चाहिए, जब तक विश्वास में प्रवेश न करें। विश्वास ये गौरीशंकर शिखर है। वहां पहुंचने के बाद विचार हो ही नहीं सकते। लेकिन ये क्रम जो मैंने बताया कल जो जीवन का भी कुछ सत्य है, वो सबके लिए केवल ये ही ट्रेक हो सकता है, ऐसा नहीं है।

कई साधक ऐसे भी हो सकते हैं कि जो कुतूहल से ही सीधे विश्वास में छलांग लगा देते हैं! पहले ही सोपान से ये ऊंचाई प्राप्त कर लेते हैं। हो सकता है। कई लोग दो सोपान चढ़ते ही विश्वास में प्रवेश कर जाते हैं। जैसे मैं कहता हूं कि आंसू कम हो जाये ये साधक के लिए अच्छी स्थिति नहीं है। इसी तरह आदमी का विस्मय खत्म हो जाये तो भी अच्छा नहीं है। क्योंकि परमात्मा का बनाया हुआ ये पूरा जगत विस्मयपूर्ण है। विस्मय भी एक अच्छी अवस्था है। और आदमी विस्मय से भी पहुंच जाता है। अर्जुन को भगवान कृष्ण के विश्वरूप की झांकी के बाद बहुत विस्मय हो रहा है कि मैं ये क्या देख रहा हूं! ये क्या है! तो कई लोग दूसरे सोपान से ही विश्वास में प्रविष्ट हो जाते हैं। और ये विश्वास का आखिरी जो पडाव है वो ही अर्जुन में दिखता है तो उसी समय जब वो कहता है, 'करिष्ये वचनं तव।' तो मेरे कहने का मतलब मेरे भाई-बहन कि अर्जुन विस्मित होता है और आखिर में ये वहां तक पहुंच जाता है कि 'करिष्ये वचनं तव।' विश्वास में प्रवेश कर जाता है। कभी-कभी बीच में विचार को आदमी लाता ही नहीं है। कुतूहल हुआ, विस्मय हुआ, अब क्यों विचार बीच में डालना? मुझे मदनभैया ने कल सजल नेत्र कहा कि बापू, मैंने कभी विचार नहीं किया है। मेरी छलांग सीधी विश्वास में थी। जरूर मुझे कुतूलत हुआ है, जरूर मैंने विस्मय महसूस किया है। किसी की छलांग सीधा विचार को छोड़कर सीधी ही हो जाए तो ये तो बड़ी कृपा है। 'योगवाशिष्ठ्य' आप पढ़ोगे तो उसमें विचार की बहुत महत्ता बताई गई है। लेकिन कोई एक रास्ता ही तो नहीं उस विश्वास तक पहुंचने का। तुलसीदासजी ने तो विश्वास के रूप भी कितने गिना दिये हैं!

बटु बिस्वास अचल निज धरमा।
तीरथराज समाज सुकरमा।।

साधुसमाज की वंदना 'बालकांड' के प्रारंभिक प्रकरणों में जब की तब गोस्वामीजी कहते हैं, विश्वास ही साधुसमाज का अक्षयवट है। यहां विश्वास का एक रूप ये आ गया कि जो कभी क्षय न हो वो अक्षय। क्षय को हम टी.बी. कहते हैं; क्षय हानि को भी कहते हैं; क्षय घटने को भी कहते हैं। और एक वस्तु याद रखना कि जितनी वस्तु छोटी होती है, नाशवंत होती है; जितनी विराट होती है, दीर्घायु होती है। ये अस्तित्व का नियम है, ये मोरारिबापू का नियम नहीं है।

मुझे स्मरण आता है; बनी घटना है बाप! बच्चों के लिए ज्यादा उपयोगी हो सकती है। मेरे युवान फ्लावर्स के लिए ज्यादा उपयोगी हो सकती है। मुझे बहुत अच्छा लगता है। पूरे देश से चिठ्ठियां आती है। मैं छत्तीसगढ का फ्लावर हूं! कोई कहता है, मैं मद्रास का फ्लावर हूं! मेरी बगियां बहुत रंगीन है! बहुत रंगीन है! छोटे-बड़े फ्लावर्स खिली हुई है। कवि काग ने गुजराती में एक पद लिखा है -

भाई! तारो बहेके फूलडांनो बागजी...
बहेके फूलडानो बाग एने पाणतियो रूडो राम.
रुदीआ केरी वाडमां रोप्यां बावन फूलडांनां झाडजी.
जाळववा चोतरफ करजे वेराग केरी वाड.
भाई! तारो बहेके फूलडांनो बागजी...

और ये सभी फूलों को लेकर मेरी व्यासपीठ उसकी माला बनाती है। सूत्र न हो तो माला नहीं बनती। ये 'रामचरित मानस' एक सूत्र है, जिसमें ये सब फूलों को मैं पिरोता हूं। अभी भी एक चौपाई मुरझाई नहीं साहब! न मुरझाएगी। क्योंकि विराट कभी मरता नहीं। क्षुद्र मर जाता है। ये अस्तित्व का स्वभाव है।

तो ये बनी घटना है। साबरमती आश्रम या तो वर्धा या तो कहीं भी, लेकिन घटना घटी है, मैंने पढ़ी है। महात्मा गांधीबापू और महादेवभाई देसाई आश्रम के एक पेड़ के नीचे बैठे हैं। कोई महत्त्व की चर्चा चल रही थी। इतने में नीम का एक पत्ता नीचे गिरता है। और महात्मा गांधीबापू ये पत्ते को लेकर महादेवभाई को दिखाते हैं कि महादेव, ये पत्ता मर जाएगा। 'बापू, आप क्या कहना चाहते हैं?' बोले, ये पत्ता मर जाएगा। लेकिन पेड़ नहीं मरेगा। क्योंकि पत्ता क्षुद्र है, पेड़ बड़ा है। महादेव, पेड़ मर जाएगा, जंगल नहीं मरेगा। और महादेव, जंगल भी मर जाएगा, जगत नहीं मरेगा। क्योंकि जगत जंगल से भी बड़ा विशाल है। और आखिर में मुझे बहुत प्यारा लगता है, गांधीजी कहते हैं कि महादेव देसाई, जगत भी मर जाएगा, लेकिन सत्य कभी नहीं मरेगा। और मैं दो बात ओर जोड़ दूं कि प्रेम कभी नहीं मरेगा। करुणा कभी नहीं मरेगी। क्योंकि ये विराट है। जो सीमित है वो मरेगा; जो असीमित है वो शाश्वत है।

तो बाप! अक्षय का अर्थ है जिसका क्षय नहीं होता। जो बना रहता है, शाश्वती है। प्रयाग का वटवृक्ष तो एक निमित्त है। और वो तो अक्षयवट है ही। कहते हैं, अंग्रेजों के शासन में तीरथराज प्रयाग के अक्षयवट के मूल में तेजाब डाला गया था, ज़हरीली बस्तु डाली गई थी कि भारतीय प्रजा इस वट के आधार पर जी रही है तो क्यों न उसको निर्मूल कर दिया जाय? लेकिन कहते हैं, जितनी ही विषिली वस्तु उसके ज़डो में डालते और नई-नई कूंपले निकलती गई! ये वट के बारे में हुआ हो, न हुआ हो इतिहास पर छोड़ दो। लेकिन विश्वास में तो कितनी ही ज़हरीली चीज़ आप डाल दो वो अक्षय ही रहता है। विश्वास, विश्वास है। मेरे भारतीय मनीषीगण, उसने बहुत बड़ा ये काम किया। ऐसे सूत्रपात कर दिये। इसीलिए भगवान शंकर को हमने जन्म-मृत्यु से पर माना है क्योंकि विश्वास है।

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।।

तो विश्वास के जो बिलग-बिलग रूप है। यदि आदमी कुतूहल से सीधा विश्वास तक पहुंच सके। अरे! हो सकता है कि कुतूहल भी नहीं, विस्मय भी न हो और कई लोग पैदा हुए ही और विश्वास में घूस गये। प्रत्येक व्यक्ति की वृत्तियां, प्रत्येक व्यक्ति की मानसिकता, प्रत्येक व्यक्ति की पात्रता भिन्न है। और मुझे स्वयं को लगता है कि मैं आपसे व्यक्तिगत बातचीत कर रहा हूं। आपको भी महसूस होता होगा कि बापू जो कह रहे हैं ये हमारी ही बात कह रहे हैं। ये होना चाहिए। न हो तो आश्चर्य! ये पर्सनल टोक है। ये व्यक्तिगत बातें है।

मुझे आज एक चिठ्ठी आई है, 'बापू, मेनेजमेन्ट की तरह आप कुछ बताओना।' मेरे में से मेनेजमेन्ट निकाल लेना। मैं पचास साल से मेनेजमेन्ट सिखा रहा हूं यदि आप ले ले तो। दूध से मक्खन निकालना फिर आपका काम होता है। मेरी कामधेनु है ये 'रामचरित मानस।' उसको मैंने दोहा। आपके विश्वास के पात्र में डाल भी दिया। अब उसको जमाओ खटाई डालकर के। दहीं करो, फिर मथो। मथन करने से फिर नवनीत निकलेगा। लेकिन मक्खन घृत नहीं है सीधा। मक्खन में थोड़ी खटाश होती ही है। इसीलिए मक्खन को हम चूल्हे पर चढ़ाकर उसको तपाते हैं। देहातों में दर्शन ही सबसे बड़ा मेनेजमेन्ट था। माँ खुद मथानी करती हो, दहीं जमाती हो ये सब मेनेजमेन्ट था। खूबसूरत नाम नहीं दिया गया था केवल! और मुझे बहुत खुशी है और लोगों ने मेरे पास कुबूल भी किया है कि मेरी कथा पांच-पांच साल सुनने के बाद कई मेनेजमेन्ट के टीचर बन गये हैं। मैंने कहा, बस ये कुबूल करते हो ये ही दक्षिणा है। जिससे मिला हो उसकी कृतज्ञता कुबूल करना ये ही दक्षिणा है। हमारे सभी शास्त्र हम इस दिशा में ले न गये! जो लोग उस दिशा में इसका अर्थ करके आज की युवानी को मार्गदर्शन देते हैं ये सलाम करनेयोग्य लोग है। इससे क्या फायदा होगा कि शास्त्र के द्वारा आप मेनेजमेन्ट प्रस्तुत करोगे तो शुरू-शुरू में तो वो शास्त्र को साधन मान लेगा, लेकिन जब-जब शास्त्र की ओर गति करेगा तो ये शास्त्र ही उसका इष्ट बन जाएगा। ये बहुत बड़ा फायदा हो जाएगा।

तो बाप! सब अपनी-अपनी चाल में चल रहे हैं। प्रत्येक चेतना का पहला यू टर्न है माँ का गर्भ। जहां मन बनता है। दूसरा यू टर्न है शालायें-कालेज-पाठशालायें। यद्यपि आज की शिक्षा ने बुद्धि को जिस रूप में विकसित करनी चाहिए इतनी तो नहीं कि लेकिन फिर भी आज की टेकनोलोजी ने यू टर्न तो दिया है। उसके बाद विश्व की युवानी तैयार हो जाये और फिर सबको अपने-अपने कार्यक्षेत्र में कोई धंधा, कोई ओफिस संभालना, अपने-अपने कर्म के क्षेत्र में जाते हैं वो है कर्मखंड। कर्मखंड में आदमी को पुरुषार्थ करना है। लेकिन कर्मखंड में सिखना ये है कि विधि कर्म क्या है और निषेध कर्म क्या है? शिक्षा तभी विद्या बन जाती है जब कोई टीचर कर्म के प्रवाह में दो वस्तु जोड़े कि तेरे लिए ये करने योग्य कर्म है, तेरे लिए ये निषेध कर्म है। ये कर्मखंड में होता है। हमारे खेत में हम जाये तो हमारे पास विधि-निषेध का विवेक होना चाहिए कि हमने बाजरी बोई है। अगल-बगल में ओर घास उगा है तो बेकार घास निकालने में कहीं हमने बोया था वो भी निकल न जाये! विधि क्या है, निषेध क्या है, ये विवेक होना चाहिए। तुलसी ने अद्‌भुत मनोविज्ञान पेश किया है।

बिधि-निषेधमय कलिमल हरनी।
करम कथा रबि नंदिनी बरनी।।

और बिधि-निषेध भी देश-काल पर डिपेन्ड है। हिन्दुस्तान में जो विधि आवश्यक है वो चीन में विधि नहीं है। और अमरिका में जो निषेध वस्तु है वो हमारे यहां हो सकती है। इसीलिए वहां भी विवेक जरूरी है। जब आदमी गुणातीत होकर घूमने लगता है, आकाश में उड़ने लगता है तब को बिधि को निषेध? लेकिन ये तो बहुत ऊंची बात है। इससे पहले तो करने योग्य, न करने योग्य का विवेक जरूरी है। तो मेरे फ्लावर्स, आप खिल रहे लेकिन अपनी खुश्बूओं को कैद नहीं कर सकते। वो स्वतंत्र है; उसको फैलाई जाय; उसको ओर जगह विस्तृत कर दी जाय। तो कर्मखंड युवानी का है तीसरा यू टर्न जीवन का। और कर्म को गोस्वामीजी ने यमुना कही है। तो क्या विधि? क्या निषेध? हर जगह में हर समय के अनुसार विधि-निषेध बदलते रहते हैं। इसीलिए भारतीय मनीषा कहती है, को बिधि? को निषेध? लेकिन जब तक कर्म में हम है और एक क्षण भी नहीं रह पाते उस कार्य किये बिना तब बहुत विधि है, बहुत निषेध है। उलझ जायेंगे हम! मुझे तीन विधि दिखानी है; तीन निषेध दिखाना है। हाथी के पैर में सबके पैर समा जाते हैं। पारसा जयपुरी का शे'र है -

उलझनों में खुद उलझकर रह गये वो बदनसीब,
जो तेरी उलझी हुई झुल्फों को सुलझाने गये!

मेरे फ्लावर्स, कभी कहना मत कि मैं मोरारिबापू के फोलोअर्स हूं। फोलोअर्स हुए तो मुरझा गये! ये मैंने तुमको अच्छा मंत्र जैसा शब्द पकड़वा दिया है। कहना, मैं बापू की व्यासपीठ का एक फ्लावर हूं। बस, इसमें पूरा आध्यात्मिक परिचय आ जाएगा। फूलों का कोई संप्रदाय नहीं होता। फूलों का कोइ मंडल नहीं होता। फूल का एक ही काम है, खुश्बू बिखैरना। खुद खिलना, मुस्कुराना। हवा का झोंका थोड़ा आये, पवनपुत्र थोड़ी हवा देते तो डाली पर

नाचना, झुमना, भंवरों को अवसर देना। इसमें से मधु बनाना। इत्र बन जाएगा जीवन खिले हुए फूलों से। लेकिन केवल ओर तीन विधि। विधि मिन्स? क्या कहना। और वो भी मैं सरल ओर करूं जो मेरी ये प्रस्थानत्रयी है। दबाव नहीं डाल रहा हूं। तीन ही विधि। जितना संभव हो सत्य में जीना। एक विधि। मैं ये नहीं कहता कि सत्य ही बोलना। मैं समझता हूं कि जमाना ऐसा है यहां झूठ बोलना पड़ता है। आदमी जाये कहां? कुछ कानून ऐसे बनते हैं। कुछ स्थितियां ऐसी होती है तो आदमी को असत्य का सहारा लेना पड़ता है। लेकिन जितना कर सके हम सत्य का आश्रय करे। और इस बिधि का तीन पेटा विभाग। सत्य सोचे, सत्य बोले और सत्य आचरे। इसीको मेरी व्यासपीठ ने विश्व को विश्वनाथ महादेव का त्रिपुंड कहा है। विचारों का सत्य, उच्चारों का सत्य और आचरण का सत्य ही तो महादेव का त्रिपुंड है। जितना हो सके। सीधी-सी बात है। धर्मगुरु आपको कहेंगे कि सत्य ही बोलना चाहिए। सत्य ही बोलना चाहिए। आज ऐसा ही आदेश देना बहुत प्रेक्टिकल नहीं है। हां, सत्य ही बोला जाय जिंदगी में लेकिन मुश्किल है! प्रेक्टिकल होना चाहिए। सत्य के करीब जितना जीया जाय बेहतर है। जितना जीया जाय सत्य के करीब जीया जाय। यही एक मात्र विधि है।

दूसरा, प्रेम ये विधि है। प्रेम किया जाय। पूरी दुनिया को महोब्बत से भर दिया जाय। और सब बदलेगा ये तीन विराट है उसका नाश नहीं होगा। क्षुद्र मरेगा। इस दुनिया में आये हैं तो हमारा दायित्व है। हम सब संयुक्त है। अरबों-अरबों प्रकाशवर्ष दूर सूर्य उगता है तो हम यहां एकदम आलस मरडकर के जागने लगते हैं क्योंकि हम जुड़े हैं। और इतने प्रकाशवर्ष सूरज दूर डूबता है तो हमें नींद आने लगती है। हम संयुक्त है, युनाईटेड है। बिलकुल मिले हुए हैं। प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व है इस पृथ्वी पर आये हुए हैं तो। पृथ्वी का एक ऋण चुकाना होता है। प्रेम रूपी विराट तत्त्व की शाश्वत तत्त्व की विधि एक ही है। और ये विधि का नाम है विश्वास।

बिनु बिस्वास न भगति दृढाई।

तीसरी बिधि है करुणा। इस मारग में रहना हो तो सबको करुणा करना सीख लो। क्षमा करना सीख लो। प्रभु क्षमाशील है। साधु क्षमाशील होता है। सत्य रहता है जूबां में। प्यार रहता है दिल में और करुणा रहती है आंखों में। ये तीनों का घर है ये। तो ये तीन विधि है, सत्य, प्रेम, करुणा। तीन निषेध मेरी व्यासपीठ मेरे फ्लावर को कहना चाहेगी। मैं नकारात्मक हूं ही नहीं कि ये न करो, ये न करो। मैं पढ़ा हूं मोन्टेसरी में, कोई बच्चा चोक से या किसी से दीवारें बिगाड़े तो उसको नकारात्मक दृष्टि से मत लो। उसकी ऊर्जा को मोड़ दो। निषेधात्मक बात मेरी व्यासपीठ ज्यादा करती ही नहीं। गलत रेखायें दीवार पर करनेवाले को चित्रकला सिखाई जाय। ऊर्जा मुड़ जाएगी।

तीन निषेध। केवल, केवल और केवल तीन निषेध। किसी की निंदा न करना; किसी की ईर्ष्या मत करना और किसी का द्वेष मत करना; बस। ये छहो शास्त्र समझ लीजिए उसमें। ईर्ष्या मत करना और तुम्हारा द्वेष करे भी क्योंकि तुम न करो तो इसका मतलब ये नहीं कि दुनिया रुक जाएगी। तुम ईर्ष्या नहीं करोगे तो दुनियावालों चुप नहीं रहेंगे, वो तो ओर बोलेंगे! मैं फिर इस पंक्ति का आश्रय लूं-

कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों काम है कहना।
छोड़ो बेकार की बातों को कहीं बीत न जाये रैना।

और एक बात याद रखना, निंदा, ईर्ष्या और द्वेष तीन ही सूत्र। निंदा करके, ईर्ष्या करके कि ये इतना आगे निकल गया तो स्पर्धा से आपको लाभ हो सकता है। ध्यान देना,

सत्य सोचे, सत्य बोले और सत्य आचरे। इसीको मेरी व्यासपीठ ने विश्व को विश्वनाथ महादेव का त्रिपुंड कहा है। विचारों का सत्य, उच्चारों का सत्य और आचरण का सत्य ही तो महादेव का त्रिपुंड है। जितना हो सके। धर्मगुरु आपको कहेंगे कि सत्य ही बोलना चाहिए। सत्य ही बोलना चाहिए, आज ऐसा ही आदेश देना बहुत प्रेक्टिकल नहीं है। हां, सत्य ही बोला जाय जिंदगी में लेकिन मुश्किल है! प्रेक्टिकल होना चाहिए। सत्य के करीब जितना जीया जाय बेहतर है। जितना जीया जाय सत्य के करीब जीया जाय।

प्लीज़, स्पर्धा से आपको लाभ हो सकता है, शुभ नहीं कभी भी होगा। और श्रद्धा से आपको शुभ ही होगा; लाभ हो, न हो, मारो गोली! और सभी लाभ कभी शुभ नहीं होता। सभी सफलता अच्छी नहीं होती।

लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब ही,
जीना भी सीख लीजिए नाकामियों के साथ।

आप नहीं करेंगे तो दुनिया नहीं बंद हो जाएगी। दुनिया तो बोलेगी। और मैं आपको इतना ही कहूं कि कोई तुम्हारा द्वेष करे -

तब तुम मेरे पास आना प्रिये,
मेरा दर खुला है, खुला ही रहेगा तुम्हारे लिए।

एक ही द्वार है, जो सदा ही खुला रहता है, गुरुद्वार; व्यासपीठ। हम सबके लिए ये ही गुरुद्वार। हम किसी की निंदा न करे। लोग करे, करने दो। हम किसी की ईर्ष्या न करे, लोग करे, करने दो। क्योंकि संसारियों का दिन बुद्धपुरुष की रात होती है। हम सब बैठे हैं, दिन में नहीं बैठे हैं, रात में बैठे हैं। ये नशा सूरज डूब जाये उसके बाद का है। क्योंकि वो डूबता है तभी अपने अंदर उगता है। 'या निशा सर्व भूतानां।' 'भगवद्‌गीता' कहती है, सब भूत की जो रात है वो योगियों का दिन है। और संसारियों का जो दिन है वो बुद्धपुरुषों की रात है। ये घड़ियां न चली जाय। चंद घड़ियां मिली है जो आज़ाद है। गुजराती शायद मरीज़साहब का शे'र है -

जिंदगीना रसने पीवामां करो जल्दी मरीज़,
एक तो ओछी मदिरा छे ने गळतुं जाम छे.

तो, दुनिया तो ईर्ष्या करेगी; निंदा करेगी। उसको कहां रोका जाय? ये निंदा, ईर्ष्या और द्वेष यदि द्वेषमूलक है तो माइंड मत करना और संदेशमूलक हो तो अपने जीवन को सुधारने की कोशिश करना। किसी की निंदा, किसी की टीका यदि हमारे लिए मेसेज बनता हो कि नहीं, उसने तो मुझे सावधान कर दिया तो उसको गाईड समझना। तुम बिलकुल सच्चे हो लेकिन द्वेषमूलक निंदा हो तो उसकी क्यों फ़िक्र करे हम? हमारा उसके साथ लेना-देना क्या है? और फिर संदेशमूलक है तो फिर स्वीकार कर लेना कि नहीं, उसने तो मेरे मारग को मोड़ दिया।

तो मेरी व्यासपीठ की इस कर्मरूपी यमुना की तीन ही विधि है - सत्य, प्रेम और करुणा। और ये कर्मरूपी यमुना का तीन ही निषेध है, अपनी ओर से किसी की निंदा न करे, किसी की ईर्ष्या न करे, द्वेष न करे। सब अपना प्रारब्ध लेकर आये हैं साहब! खुले आसमान में ओक्सिजन लेने के लिए हम स्पर्धा क्यों करें? तुम्हारे फेफ़ड़े में जितनी ताकत हो इतनी लो। क्यों ईर्ष्या? क्यों द्वेष? क्यों निंदा? अच्छे कपड़ें पहनो, अच्छा खाओ-पीओ, अच्छे गहनें पहनो। व्यासपीठ कोई पाबंदी नहीं रखती। लेकिन ईर्ष्या न करो, निंदा न करो, द्वेष न करो। और पोझिटिव ले लूं कि यदि निंदा होती है, द्वेष होता है तो भी कथा में आया करो। कथा छुड़वा देगी। जब स्वाद का टेस्ट बच्चे को आने लगता है तब उसके टेस्ट के विपरीत कोई टेस्ट हो, बमन कर देगा। वैसे कथा गाते-गाते, सुनते-सुनते मेरी और आपकी ग्रंथि जब टूट जाएगी तब टेस्ट बदल जाएगा। तो इतना ही है। ये कर्मखंड का यूटर्न है। गर्भखंड का यूटर्न है, मन बनता है। वर्गखंड का यूटर्न है, बुद्धि विकसित होती है। और कर्मखंड का यूटर्न है, चित्त राग-द्वेष से मुक्त हो जाता है। क्योंकि ज्यादा से ज्यादा कर्मक्षेत्र में राग-द्वेष आता है। और उसी समय यूटर्न आ जाये और चित्त द्वेषमुक्त हो जाये।

आखिरी खंड है उसको मैं धर्मखंड कहूं। फिर उसके बाद कोई टर्न आते ही नहीं। एक ऐसी राह मिलेगी कि तुम्हें कोई ओवरटेईक नहीं करेगा। ये धर्मखंड जो है ये बहुत आखिरी और अंतिम यूटर्न है और वो है विश्वास। उसके बाद कोई मोड़ आते ही नहीं। ईसीलिए हमारी चर्चा शुरू हुई कल के बीजरूप वक्तव्य से कि कुतूहल, विस्मय, विचार और विश्वास। और हो सकता है कुतूहल से भी कोई सीधा पहुंच जाये विश्वास में। जब ऐसी ऊर्जा आ जाती है, ऐसी अवस्था आ जाती है तो शायद सीधा आदमी कुतूहल से पहुंच जाय; विस्मय से पहुंच जाय। हो सकता है। लेकिन सब व्यक्ति की बिलग-बिगल स्थिति होती है। ईसीलिए किसी के लिए विचार भी जरूरी होता है। विश्वास की ऊंचाई पकड़ोगे तब विचार कम हो जायेंगे।

तो बाप! धर्मखंड आखिरी यूटर्न है और वो है विश्वास। विश्वास नाशवंत नहीं होता, क्योंकि ये विराट है। तो विश्वास अक्षय होता है। क्योंकि विराट है। विराट का नाश नहीं होता। विश्वास में चले जायेंगे तब विचार अपनेआप बंद। जब तक न जाये तब तक विचार जरूरी है। बुद्धि से सोचना क्या हेय है, क्या प्रेय है, क्या श्रेय है? ये जरूरी है। ईसीलिए योगवाशिष्ठ्य ने विचार पर बहुत बल दिया है। भगवान व्यास को भी मैं बहुत सावधानी के साथ पेश कर सकता हूं। विचार पर बहुत बल दिया है। और स्वाध्याय के प्रणेता हमारे परम पूज्य पांडुरंग दादा ने तो एक किताब लिख दी उसका नाम रख दिया 'व्यास-विचार।' लेकिन जो सीधे कूद जाये तो जरूरी नहीं है विचार। वेदांत का एक बहुत बड़ा क्लिष्ट ग्रंथ है 'विचार सागर।' शांकरी परंपरा का ग्रंथ माना जाता है 'विचार सागर।'

अब दूसरा प्रश्न लेता हूं। 'बापू, कभी विचार संदेह भी पैदा करता है?' बिलकुल। विचार संदेह करेगा। और विचार संदेह करे तो इससे डरना भी मत। गुरु के पास भी संदेह करने की छूट होती है। 'प्रभु सोह राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।' मुझे राम समझ में नहीं आ रहा है। मुझे बताओ कि राम कौन है? लेकिन एक पद्धति है संदेह को जिज्ञासा बनाने की।

'समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठ ...'

हाथ में समिध लेकर कोई श्रोत्रिय हो, ब्रह्मनिष्ठ हो ऐसे बुद्धपुरुष के पास जाना, 'प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवयात्।' उटपटांग प्रश्न-विचार संदेह पैदा करेगा वो तो नाश करेगा! गुरु कभी संदेह करने की मना नहीं करता। बहुत निकट होता है उसको मना करता है। बाकी थोड़े सीमाओं पर घूमते हो उसको कभी मना नहीं करेगा। क्योंकि उसको अवसर देता है कि तू संदेह करते-करते निकट आ। लेकिन जो संन्निकट बिलकुल है उसको गुरु संदेह करने की मना करता है कि कहीं नौका में बैठने की तैयारी थी और तू डूब गया! तेरी मुक्ति तेरी दो-तीन लम्हों थी और तूने संदेह करके मोक्ष गंवा दिया! मोक्ष मानी एन्जोय, आनंद। तूने प्रसन्नता गंवा दी! ईसीलिए निकट को कहना पड़ता है कि 'नात्र संशय।' सती कितनी निकट है शिव को? अर्धांगिनी है। ईसीलिए कहते हैं -

सुनहि सती तव नारि सुभाऊ।
संसय अस न घरिअ उर काऊ।।

करुणा फूटी है। देवी! तुम्हारा नुकसान मैं नहीं सह सकूंगा। तुम बिलकुल आखिरी सीढ़ी पर हो! और तुम चुकी जा रही हो! और ध्यान देना, करीब-करीब संदेह दूरवाले ही करते हैं। जो निकट बहुत होते हैं और वो भी संदेह करे तो समझना वो स्थूलरूप में निकट है, सूक्ष्म रूप में निकट नहीं है। और किसी के साथ स्थूलरूप में निकट रहना ये कोई उपलब्धि नहीं है। सभी स्थूलता नाशवंत है। आप सोचो, माँ दूसरे के बच्चों को नहीं कहने जाएगी कि ऐसा मत करो, ऐसा मत करो। अपने बच्चों को कहेगी कि नहीं बेटा, नहीं बेटा, ऐसा न करो बेटा! क्योंकि ये अपना है। यद्यपि बुद्धपुरुष को अपना-पराया का भेद नहीं होता है। फिर भी लगे कि नहीं, नहीं! आखिरी क्षण है, मोती पिरोया जाय। ऐसी क्षण आई और फिर 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं...' मोक्ष मानी आनंद चुक जाएगा। ये प्रसन्नता चुक जाएगा। ये अवसर चुक जाएगा।

बड़े भाग मानुष तनु पावा।

देह धर्म साधन है। देह की भी एक जगह है। लेकिन ये सब कुछ होते हुए शंकराचार्य कहते हैं, सुंदर देह हो, नीरोगी देह हो, मेरुतुल्य धन हो, सबकुछ हो लेकिन गुरु के चरण में मन नहीं लगा तो 'ततः किम्? 'ततः किम्?' 'ततः किम्?' हमारा छोटा-सा घर था साहब! उसमें बीच में छोटा-सा आंगन। सीढ़ी थी। उपर रसोडा था। तो दादा के पास जब मैं पढ़ता था। माँ बहुत बीज़ी रहती थी सावित्री माँ। क्योंकि सबकुछ वो करती थी। लेकिन उसको जब समय मिलता था तो दो-तीन बार मैंने मार्क किया कि तो वो दो-तीन सीढ़ी नीचे ऊतरकर सुनती थी कि दादा क्या सुना रहा है? एक दिन माँ ने कहा था कि बेटा, ये चरण न हो तो कुछ नहीं है! मेरी माँ को खबर नहीं थी कि 'ततः किम्? ततः किम्? ततः किम्? ततः किम्?' उसको खबर ही नहीं थी। लेकिन माँ के इस बोल याद आ रहा है कि बेटा, तू जहां बैठा हो ये चरण न हो तो 'ततः किम्?' और ये है तो ये मिट्टी का मकान इन्द्रसदन है! यदि ये है निष्ठा तो ऐश्वर्य ही ऐश्वर्य है। गरुड के मन में कम संशय था? लेकिन बेचारा दूर था। और पांखों के कारण भी दूर रहना चाहता था कि मैं हिमालय में जाके कौए के आश्रम में बैठूं? मैं गगनगामी हूं। तो दूर रहा तब तक संशय, संशय! और जैसे आश्रम के परिसर में आया तो 'गयेउ मोह संसय नाना भ्रम।' निकटता ने उसको वो कर दिया। तो संशय विचार से होता है ये बात कुबूल करनी चाहिए। लेकिन उसकी दिशा बदली जा सकती है।

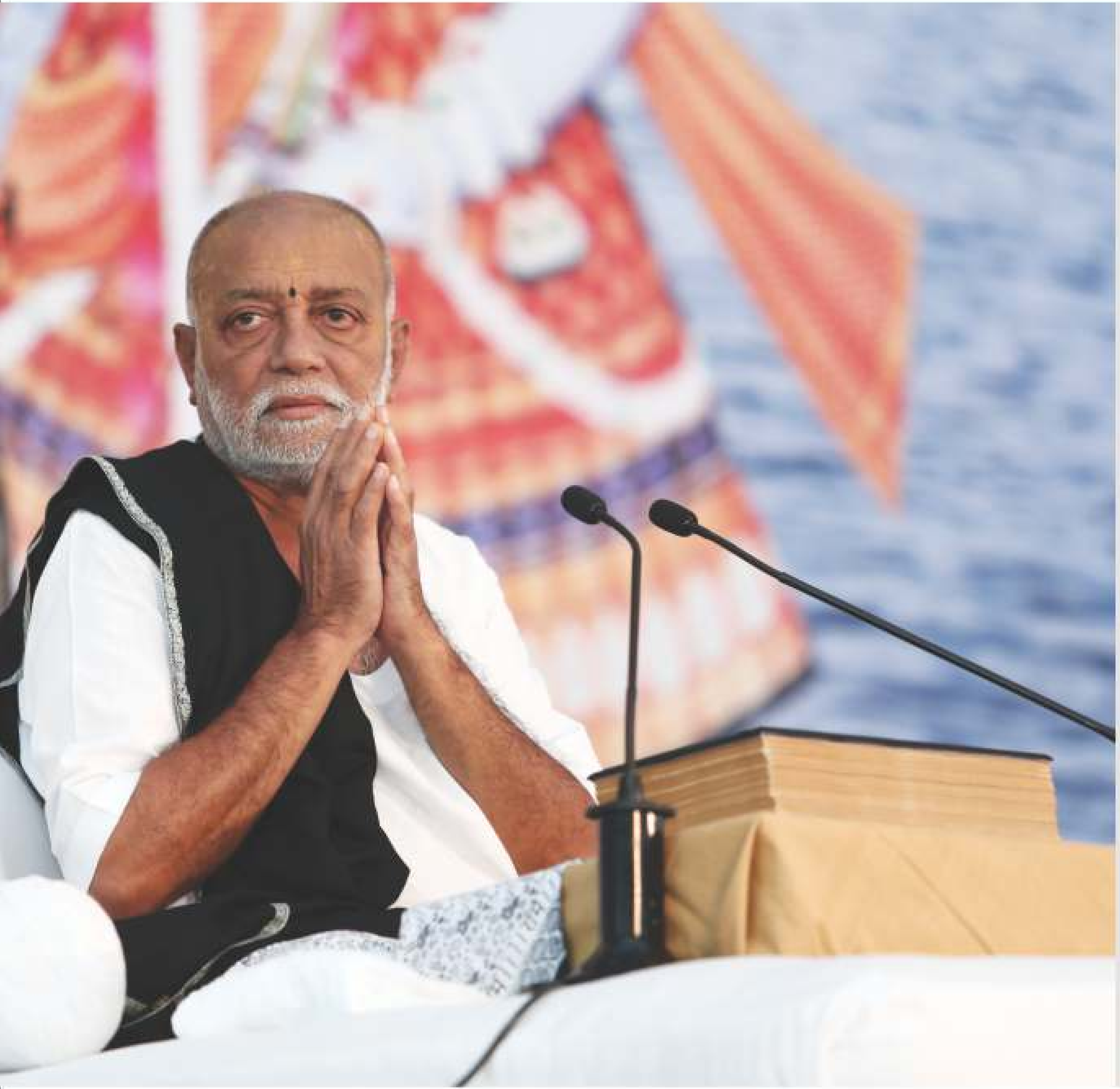

कथा–दर्शन

- धर्म धारण करने के लिए है, दूसरों पर थोपने के लिए नहीं है।
- धर्मजगत को चाहिए आदमी को विचार करने की छूट दे।
- कथा केवल इतिहास नहीं है; कथा अध्यात्म है।
- साधु सबके सन्मुख होता है, किसी के विमुख नहीं होता।
- सच्चे साधु को कोई दुश्मन नहीं होता, कोई मित्र भी नहीं होता।
- एक ही द्वार है जो सदा ही खुला रहता है, गुरुद्वार।
- सद्गुरु सदा अपने आश्रित का शुभ करने में अतृप्त रहता है।
- प्रत्येक बुद्धपुरुष चतुर्भुज होता है। उनके दो स्थूल, दो सूक्ष्म हाथ होते हैं।
- यदि भीख भी मांगनी है तो समर्थ के द्वार पर मांगना। कंगालों की दाढी में हाथ मत डालना।
- भक्ति का प्रवाह रुक जाता है जब द्वेष शुरू हो जाता है।
- सत्य रहता है जूबां में, प्यार रहता है दिल में और करुणा रहती है आंखों में।
- सत्य, प्रेम, करुणा किसी को पराधीन नहीं करता।
- हम किसी को परवश रखे, किसी को पराधीन रखे, ये बहुत बड़ी हिंसा है।
- आंसू कम हो जाये ये साधक के लिए अच्छी स्थिति नहीं है।
- सत्य जितनी मात्रा में आये, इर्ष्या कम हो जाएगी।
- जहां प्रेम का चराग जलता है वहां निंदा का अंधेरा टिकता नहीं है।
- धन की कमी दु:ख नहीं देती है, धन पर रही ममता बहुधा दु:ख देती है।
- परमात्मा ने सबको बिलग–बिलग शक्तियां दी है। नकल न करो।
- पूजा से सेवा बहुत महत्त्व की वस्तु है। पूजा सस्ती है। सेवा बहुत कठिन है।
- अभाव का भी एक आनंद होता है। अभाव का भी एक ऐश्वर्य होता है।
- किसी के साथ स्थूलरूप में निकट रहना ये कोई उपलब्धि नहीं है। सभी स्थूलता नाशवंत है।

मानस-जमुना : ६

समाधान वो ही दे सकता है, जो समाधि से बोलता हो

कथा में प्रवेश करें इससे पूर्व आज एक छोटा-सा उपक्रम हुआ। हमारे परमस्नेही शायर राज कौशिकभैया, उसकी एक चौथी किताब 'हुआ क्या है' समाज को समर्पित की गई। मैं प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। ग़ज़ल जो आती है उसमें खुद का अनुभव, समर्पण एक श्रद्धा व्यक्त होती है। और मुझे लगता है कि एक व्यक्ति की ये श्रद्धा, समर्पण, अनुभव उसमें शायद सभी की आवाज़ है। ऐसी एक किताब का लोकार्पण इस पवित्र धाम में हुआ। राज कौशिकभैया को मैं बधाई देता हूं। कल की कथा के सूत्रों से जुड़ा हुआ एक प्रश्न है। कल जो बहुत बड़ी चर्चा हुई कि विधियां बहुत है, निषेध भी बहुत है। ये करो, ये न करो। इन दोनों कर्म के प्रवाह में दुनिया चलती रहती है। और व्यासपीठ ने उसका सार निकाला कि सत्य, प्रेम, करुणा; जिसको मेरी व्यासपीठ ने विधि कहा। विधि तो शब्द में डालना पड़ता है। ये कोई विधि नहीं है। ये कोई क्रियाकांड नहीं है। ये कोई पूजा-पाठ नहीं है। और निषेध में मैंने पहली बार आपके सामने रखा कि ईर्ष्या न करे, निंदा न करे, द्वेष न करे। अब पूछा गया है कि 'बापू, ये न करे, लेकिन कैसे? उसका कोई उपाय?'

अंधेरा न हो, अंधेरा न हो, अंधेरा न हो; उसके लिए हम लाखों प्रवचन करे, अंधेरा जाता नहीं है। एक मोमबत्ती जलानी होती है। सपने में हम पूरी जिंदगी जी लेते हैं। कोई उपाय नहीं है कि सपने के सुख-दुःख से मुक्त हो। एकमात्र उपाय है जाग जाना। मैं इतना ही निवेदन करना चाहूंगा मेरे भाई-बहन कि दीप जले, अंधेरा जाएगा। मेरा अनुभव कहता है, सत्य जितनी मात्रा में आये, ईर्ष्या कम हो जाएगी। आप देखिएगा, आप बुद्धिमान है। आप इक्कीसवीं सदी की इस टेकनोलोजी में जी रहे हैं। कम से कम आप देखो तो सही दुनिया को कि जिसके पास ज्यादा मात्रा में सत्य होगा, अधिकाधिक सत्य होगा वो किसीकी ईर्ष्या करता आपको दिखेगा नहीं। गांधी में सत्य था, इसीलिए गांधी को कभी ईर्ष्या करते आप नहीं देख पाओगे। वो अंग्रेजों को यहां से भाग जानेकी बात करेगा तो भी उसके प्रति नफ़रत करके नहीं, समझाकर कहेगा, ये देश तुम्हारा नहीं है, हमारा है। आपको जाना चाहिए। ये आपका धर्म है। सत्य ऐसे ईर्ष्या को मिटाता है। लाख चिल्लाये कि अंधेरा तू जा! जा! पूरा दलकटक लेकर अंधेरे को निकालने के लिए हम प्रस्तुत हो जाए, जाएगा नहीं। काम तो बिलकुल छोटा-सा है, एक चराग जलाया जाय। लेकिन आज-कल क्या हो गया है? ईर्ष्या को नष्ट करने के लिए लोग चराग नहीं जला रहे हैं। ईर्ष्या की बढ़ोतरी में दुनिया के मकान जला रहे हैं! जिन्दे लोगों को जला रहे हैं! सोचिए! तो जहां सत्य होगा, ईर्ष्या कम हो जाएगी। बिलकुल नष्ट हो जाएगी।

दूसरी निषेधात्मक बात वो निंदा। निंदा उसकी निकल जाएगी जब आदमी प्रेम करने लगेगा। आप

जिसको प्रेम करते हैं उसकी निंदा आप करते तो नहीं, दूसरा करे तो आप सह भी नहीं सकते। आप सक्षम होते हैं तो मुकाबला करने लगते हैं। न होते हैं तो आप निकल जाते हैं। जहां प्रेम का चराग जलता है वहां निंदा का अंधेरा टिकता नहीं है। आपको क्या लगता है? मैं आपको पूछ रहा हूं। क्योंकि मैं व्यासपीठ पर आपके उत्तर देने के लिए नहीं, आपके समाधान के लिए हूं। उत्तर तो शिक्षक देता है, साधु समाधान देता है। उत्तर तो परंपरागत पोथीओं से आता है, किताबों से आता है, समाधान कलेजे से आता है। और समाधान दुनिया में वो ही व्यक्ति दे सकता है, जो समाधि से बोलता हो। शुकदेव ने कोई प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। शुकदेव ने परीक्षित का समाधान किया, क्योंकि शुकदेव समाधि से बोल रहा है। उत्तर क्या दे? उत्तर तो पंडित लोग देते हैं। जिसमें बहुत लोजिक है, वो तोड़मरोड़कर आपको उत्तर दे देगा! इससे कुछ हल नहीं होनेवाला है। समाधान दिया जाय। और बड़ा खतरनाक सूत्र, द्वेष! द्वेष मिटेगा करुणा के चराग जलाने से।

मैंने एक समीकरण आपको दिया है बहुत समय से कि सत्य, प्रेम और करुणा। तो जहां सत्य वहां अभय है; जहां अभय है वो आदमी शांत है। फिर जहां प्रेम है वहां त्याग है। प्रेमी त्याग करेगा ही। 'गीता' ने कहा, जहां त्याग है वहां निरंतर शांति है। बिलकुल स्पष्ट गणित है। जहां करुणा है वहां अहिंसा है। और जहां अहिंसा है वहां शांति है। अब जो निषेध है कर्म की जमुना में ईर्ष्या, निंदा और द्वेष; उसका भी एक फेमिलि प्लानिंग देख लो। सत्य से अभय, अभय से शांति। प्रेम से त्याग, त्याग से शांति। करुणा से अहिंसा, अहिंसा से शांति। 'ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।'

अब ये दूसरा ले लूं। ईर्ष्या, उसके घर एक बेटा पैदा हुआ है उसका नाम है भय। जो आदमी ईर्ष्या करता है वो अंदर से बहुत भयभीत होता है। क्योंकि ईर्ष्या मन से होती है। ईर्ष्या जन्म देती है भय को। और भय फिर और एक को जन्म देती है। उसका नाम है अशांति। जो भयभीत है वो अशांत है। निंदा जन्म देती है संग्रह को। जिसका बिलकुल निंदक स्वभाव होता है वो निंदा बहुत इकठ्ठी करता है! निंदा करनेवाला संग्रहखोर होता है। वो चाहते हैं निंदा ओर मिले, ओर मिले! निंदा की संतान का नाम है परिग्रह। और परिग्रह की बेटी का नाम है अशांति। निंदा का स्वभाव है संग्रहित करना लोगों के दोषों को। निंदक आदमी को कोई शुद्ध हो जाये अच्छा नहीं लगता। इसीलिए कोई शुद्ध-बुद्ध में दोष न हो तो भी कोई दोष पैदा करेगा! और कोई भी संग्रह अशांति पैदा करता है। और फिर तीसरा है निषेधात्मक सूत्र, द्वेष। द्वेष बदला लेने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। कभी-कभी द्वेष हत्या भी करता है! कभी-कभी द्वेष इतना खतरनाक शत्रु है कि आदमी बदला लेने तक तुल जाएगा, आदमी हिंसा करने तक तुल जाएगा। इसीलिए मेरा जो समीकरण है वो जो दुनिया को देखते-देखते मैंने पाया है वो आपके सामने पेश कर रहा हूं कि द्वेष से हिंसा का जन्म होता है। हिंसा मानी किसी को शस्त्र से आप मार दो ये नहीं। हिंसा मीन्स तुम निरंतर दूसरे का अपमान किया करो, द्वेष के कारण तुम निरंतर सोचो कि ये दूर ही रहे! तो द्वेष जो प्रकट होता है इसका नाम हिंसा है। और हिंसा अशांति ही देती है। कभी भी शांति आती है तो अहिंसा से ही आती है। द्वेष से पैदा होता है प्रतिशोध, बदला, हिंसा और उससे उत्पन्न होती है अशांति। तो सत्य से अभय; अभय से शांति। प्रेम से त्याग; त्याग से शांति। करुणा से अहिंसा; अहिंसा से शांति। 'ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।' ईर्ष्या से भय; भय से अशांति। निंदा से परिग्रह-संग्रह; संग्रह से अशांति। द्वेष से प्रतिशोध-बदला, हिंसा; हिंसा से अशांति। 'ओह! अशांति! अशांति! अशांति!'

मैं कल कह रहा था कि 'अनंतगुणभूषिते'; श्री यमुनाजी के अनंत गुण है। वैष्णव जगत जानता है कि यमुनाजी के हजार नाम है। 'यमुनासहस्रनामावलि' है। 'यमुनाष्टक' पर बहुत लोगों ने कलम उठाई है साहब! वैष्णवी परंपरा में-वल्लभी परंपरा में गुसाईजी ने भी 'यमुनाष्टक' लिखा है। हरिवंशजी ने और पंडित जगन्नाथजी ने भी एक 'यमुनाष्टक' लिखा है। और शंकराचार्य भगवान ने तो ग़ज़ब कर दिया है! तो यमुनाजी के अनंत गुण है। यमुनाजी प्रवाह स्वरूपा है। 'पद्मबंधोसुता।' पद्म मानी कमल। कमल का 'बंधो', मित्र, कमल का भाई है सूर्य। क्योंकि भाई उसको कहते हैं कि एक-दूसरे को देखते ही मुस्कुराये। सूरज निकले, कमल मुस्कुराये। कमल मुस्कुराये, सूरज प्रसन्न हो जाये। मित्रों का, भाईयों का ये लक्षण है। तू सूर्यपुत्री है; तू रसरूपा है; कालिन्दी है। तेरे में अनंत गुण

है। तो ये अनंतगुण का कैसे वर्णन करे? किन-किन गुणों को ले? और अनंत गुण कैसे हम समझे? इसीलिए मुझे मेरी अदा से आपके सामने यमुनाजी के नव गुण पेश करने हैं। क्योंकि नव पूर्णांक है। इसमें अनंत गुण आ गया आप समझ लीजिए।

अनंतगुणभूषिते शिवविरंचिदेवस्तुते।
घनाघन निभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे।।
विशुद्ध मथुरातटे सकल गोपगोपीवृते।
कृपाजलधिसंश्रिते मम मनः सुखं भावय।।

हे यमुनाजी, तू अबूझ को भी इष्ट फल देती है और तू बहुत जानकार को भी इष्ट फल देती है। इसीलिए दो जानकार नाम पसंद किये महाप्रभुजी ने। ध्रुव अबूझ बालक था। यमुना के तट पर छः महिना रहा और इच्छित फल पाया। और पराशर? ये तो कितना बुद्धिमान! कितना महान ऋषि है! लेकिन तेरे पास बुद्धि और अबूध का कोई भेद नहीं। यमुनाजी, तू अभीष्ट प्रदान करनेवाली है। आपमें अनंत गुण है, हे माँ! हे कृष्णप्रिया! तुझमें अनंत गुण है। हम नहीं कह पायेंगे। इसीलिए सार रूप में यमुना के नव गुण हम समझें। वो ही 'अनंतगुणभूषिते' समझ लेना। अब यमुना है रसरूपा, जलरूपा, प्रवाहरूपा। जल के नव गुण है। जल का पहला गुण है, जल शीतल होना चाहिए। कफ़ हो, शर्दी हो और हम गरम पानी करके पीए ये तो एक औषधि हो गई। जल का स्वभाव नहीं है उष्णता। जल का स्वभाव शीतलता है। 'अनंतगुणभूषिते' यहां 'गुण' शब्द है, लेकिन आप जानते हैं, मैं बहुत क्लीअर करता रहा हूं कि मुझे 'गुण' शब्द से 'स्वभाव' शब्द ज्यादा प्रिय है। यमुनाजी का पहला स्वभाव है शैत्य, शीतलता। कोई भी जल के तीन लक्षण होते हैं-शीतलता, मधुरता और स्वच्छता। हम शीतल जल पीते हैं। और स्वच्छ जल हम पीते हैं। गंदा पानी नहीं पीते। और मधुर जल पीते हैं, कडवा पानी हम नहीं पीते हैं।

तो यमुनाजी प्रवाहरूपा है, रसरूपा है। और कर्म है यमुना। 'करम कथा रबिनंदिनी बरनि।' तो कर्म है यमुना। मेरा कहना आपको ये है कि कर्मरूपी यमुना के भी ये तीन स्वभाव होना चाहिए। आपका पुरुषार्थ शीतल होना चाहिए, उग्र नहीं होना चाहिए। जरा शीत दिमाग से करो कर्म। दूसरा, स्वच्छ दिमाग से कर्म करो। जल का तीसरा लक्षण है, कर्म मुस्कुराते हुए करो। आदमी दफ्तर जाता है तो टेन्शन में होता है! कर्म आदमी को स्वाद दे। आप देखो, मैं क्या कर्म करता हूं? मेरी तो कोई दुकान नहीं है, न कोई व्यापार है। मेरा कर्म ये (कथा) है। ये कर्म मुझे स्वाद दे रहा है। तो कर्मरूपी यमुना के ये तीन लक्षण समझे हमारे जीवन के लिए। हमारा कर्म उग्र न हो। हमारा पुरुषार्थ मुस्कुराता हुआ हो, मधुर हो, स्वच्छ हो और स्वादु हो।

तो तीन जल के लक्षण; तीन यमुना के लक्षण और तीन कर्मरूपी यमुना के लक्षण-शीतलता, स्वच्छता और मधुरता। चौथा यमुनाजी का लक्षण है; प्रवाह का स्वभाव है उपर से नीचे आना। कोई भी जल और प्रवाह का उपर से नीचे आने का ये चौथा स्वभाव है। 'कलिन्दगिरिमस्तके' कहा। उसका मस्तक देखो। और वहां से निरंतर नीचे आ रही है। क्या मतलब है? हम नहीं जा पाते हैं, हमारे पास आती है। युवान भाई-बहन, कर्म के प्रवाह को भी इसी रूप में चौथे स्वभाव में लो कि हमारा कर्म जहां से उद्भव हुआ है ये कर्म का परिणाम नीचे तक आखिरी लोगों को प्राप्त हो। और आखिरी रूप जो कर्म का होता है वो उत्सव रूप होता है। 'कलिन्दगिरिमस्तके' अथवा तो यमुनोत्री में यमुना है फिर जाएगी लेकिन तांबे की लोटी में जो जल आता है वो यमुना का उत्सवी रूप बन जाता है। कर्म का आखिरी रूप उत्सव है। हमारा कर्म हमें थका देनेवाला सिद्ध हो गया है! ओशो कहा करते थे कि मानवी का कर्म नृत्य बन जाना चाहिए, नर्तन बन जाना चाहिए।

जल नीचे आता है। और कथारूपी जमुना भी नीचे ऊतरती-ऊतरती तलगाजरडा तक आई। तलगाजरडा में भी एक मिट्टी के घर में आई। मिट्टी के घर में भी एक कोना था वहां आई, जहां मेरा बुद्धपुरुष बैठा था। क्योंकि उनका ये स्वभाव है उपर से नीचे आना। हम क्या चाहते हैं, उपर जाये, उपर जाये, उपर जाये! तो रामकथारूपी यमुना भी उपर से नीचे आई। हम जैसे जीवों के पास, जंतुओं के पास आई ये यमुना। क्योंकि ये उनका स्वभाव है। पानी को लोटे में लेकर लाख उछालो, पानी उपर नहीं जाएगा, नीचे ही आएगा। क्योंकि ये उनका स्वभाव है।

शंकराचार्य ने यमुना को 'सिंधुसुते' कह दिया कि मूल में तो तू समुद्र की बेटी है। फिर भाप बनी, फिर बादल हुई, फिर संज्ञा से सूरज ब्याहा, तपस्या की संज्ञा ने, फिर तू

नीचे आई। पानी नीचे ही आएगा; ये स्वभाव है। आप सोचिए, भगवान बुद्ध राजकुमार थे। कोई कमी नहीं थी। जिसके द्वार पर हजारों लोग भीख मांगते थे वो हाथ में कांसा लेकर दर-दर भिख्खुओं के संग भीख मांगता हैं! क्योंकि उसको बुद्धत्व मिला। बुद्धत्व को चाहिए ऊंचाई प्राप्ति के बाद नीचे आये, आखिरी व्यक्ति की भिक्षा ले। मेरा नरसिंह मेहता क्यों गया दलित के घर? आज भी कोई-कोई प्रांत कोई दलित के घर का पानी पीता है तो गांव के मुखिया उसको बाहर निकाल देता है! नरसिंह ने पाया था बुद्धत्व। तो चौथा लक्षण है यमुनाजी का उपर से नीचे आना। ये ('मानस'रूपी) यमुना भी उपर से नीचे आई।

पांचवां स्वभाव; आप देखिएगा, पानी का प्रवाह नीचे आएगा तो गड्ढा बीच में आया तो उसको भरे बिना आगे नहीं जाएगा। उसको उपेक्षित नहीं करेगा। गड्ढा आया ही तो पहले प्रवाह का दायित्व है उसको भर देता है फिर छलक कर आगे बढ़ता है। तुम्हारा कर्म यदि ऊंचा है तो तुम्हारे बीच में जो अभावग्रस्त लोग आये उसको पहले भरो। इसको ओवरटेईक करके, उपेक्षित करके गये तो तुम्हारा कर्म, कर्म नहीं है। तुम्हारी यमुना, यमुना नहीं है। तुम्हारी रामकथा, रामकथा नहीं है। ये है यमुना महाराणी का स्वभाव। वहां बुद्धु आ जाए तो भी भर देता है। बुद्ध आ जाए तो भी भर देता है। दोनों को मालामाल कर देती है।

छठ्ठां लक्षण है, यमुना एक ऐसी शुभकामनाओं का प्रवाह है, ऐसी शुभेच्छा का प्रवाह है। उसका छठ्ठा स्वरूप, शुभेच्छा; प्रत्येक के प्रति सद्भावना। तुम्हारे पास प्रवाह है, तुम्हारे पास गति है, तुम्हारे पास कर्म की सब संभावनायें है, कर्मक्षेत्र है तुम्हारे पास तो सबके लिए शुभेच्छा हो। उसका जीवन स्वच्छ रहे ऐसा सद्भाव हो। ऐसा सद्भाव यमुना के प्रवाह का स्वभाव है, ये उसका एक लक्षण है। यमुनाजी इतनी आदर पा गई ये उसका सातवां लक्षण है क्योंकि यमुना का जल श्याम है। भगवान के वर्ण का वर्ण उसने पसंद किया है। ये उनका लक्षण है कि वो ओर रंग में नहीं आई। इष्ट के रंग का रंग है। कर्म का लक्षण भी यही होना चाहिए कि जैसा मेरे सामने कार्यक्षेत्र है उसमें मैं रंग जाउं।

मैं जब मेट्रिक में फेईल हुआ न साहब, फिर मेरे सामने समस्या आई कि मैं करूं क्या? जीवन तो अभावग्रस्त था। जिम्मेवारियां सामने मुंहफ़ाड खड़ी थी। क्या करूं? तो जो मैंने सोचा था वो कहूं कि मेरे मन में एक विचार ये आया कि छोटी-सी एक दुकान करूं तलगाजरडा में। फिर सोचा कि कहीं तलगाजरडा छोड़कर के काशी जाकर संस्कृत पढ़ूं। लेकिन महादेव ने कृपा की कि तुझे काशी में पढ़ने की जरूरत नहीं, काशी के पंडित तुम्हें सुनेंगे। काशी ही जाना है तो इस रूप में जा। लेकिन ये मनोरथ था कभी। फिर हुआ एक बार कि ग्रेज्युएट हो जाउं। तीन बार तो मेट्रिक में फेईल हुआ! मैं फेईल होनेवाले लोगों का आदर्श बन सकता हूं कि तीन बार फेईल होओ तब तक कभी भी निराश मत होना। तो सोचा कि जूनागढ में बहाउद्दीन कोलेज है वहां जाउं। तो थोड़े प्रमाणपत्र लिये। सच्ची डीग्रियां थी। एक छोटी-सी फाईल बनाई। गया जूनागढ। प्रिन्सिपालसाहब का नाम तो मैं भूल गया, लेकिन चेहरा याद है। अल्लाह करे, वो हो तो कभी मुझे मिलना है! मैं गया, साहब, मुझे एडमिशन चाहिए। 'अच्छा, तीन बार तो फेईल हुए हो!' मैंने कहा, जो है, है! लेकिन पास होकर आया हूं। 'मार्कस बहुत कम है। हमारी कोलेज में इतने कम मार्कस में प्रवेश हम नहीं देते। हमारी कोलेज की एक इज्जत है। जाओ!' इतना चीड़चीड़कर के मुझे निकाला है! और मेरे लिए मैं इधर जाउं या उधर जाउं? अब फिर तलगाजरडा लौटूं?

तो मैंने सुना भी था कि शापुर में जूनागढ से दस किलोमीटर करीब दूरी पर है वहां एक गांधीविचार का सर्वोदय आश्रम है वहां मेट्रिक पास हो उसको प्रायमरी स्कूल के शिक्षक होने की एक साल की ट्रेनिंग दी जाती है। मैंने सोचा कि वहीं यदि एडमिशन मिल जाए तो हम टीचर बन जाये। और नियुक्ति भी तलगाजरडा के अगल-बगल में मिल जाए तो सब संभल जाए। तो गया बस में बैठकर और परमात्मा ने चाहा तो वहां एडमिशन मिल गया। एक साल वहां पढ़ लिया। पढ़ा क्या खाक! माला घूमाता रहा! मैंने मेरे गृहपति मानदादा को कहा कि दादा, मैं सबके साथ नहीं रह पाउंगा। तो एक छोटा-सा बिलकुल गंदा कमरा था, जहां सफ़ाई काम के सब झाडू वो उसमें रख दिये जाते थे। गृहपति थे उसको कहा, वो कमरे में मैं रहूं? बोले, अरे, उसमें तो झाडू रहते हैं! ठीक है रहो। फिर तो बहुत सहयोग मिला साहब! तो फिर एक छोटा-सा कमरा दे

दिया। उसमें मेरे साथ महेश पंड्या करके एक लड़का मेरा सहाध्यायी था वो रहता था। मैं तो क्या, पढ़ाई में कोई रुचि नहीं। माला घूमाता रहता था और वो मेरे पर गुस्सा करे, तू नापास होनेवाला है! फिर तो पास हो गया साहब! टीचरी भी कर ली! और फिर जहां जाना था वहां पहुंच गये। कर्म करनेवाले, उसका एक लक्ष्य हो कि मुझे यही करना है।

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होहि।

ठाकुर ने जो चाहा वो कर रहे हैं। मेरे भाई-बहन, अपने लक्ष्य का निर्धारण और वो भी या तो हम अपनी मांग रख दे कि हमें ये होना है। या तो हम उस पर छोड़ दें। जब हम उनके उपर छोड़ देते हैं तो सबकुछ हो जाता है। जो आदमी ने यमुना पर अपने को छोड़ दिया है वो आदमी का सब कुछ हो जाता है। एक कर्म में लग जाओ, बस। डामाडौल नहीं। जो करो वो निष्ठा से करते चलो। ये है आठवां स्वभाव यमुना का। 'रामायण' भी हमें यही सिखा देती है।

नववां और अंतिम पड़ाव है, यमुना का स्वभाव है कि मेरे पास कोई सत्य लेकर आयेगा तो मैं उसको रास्ता दे दूंगी। टोपले में कृष्ण लेकर वसुदेव आये। अनराधार वर्षा हो रही थी। कैसे गोकुल पहुंचे? आप कल्पना करो, यमुना ने मार्ग न दिया हो तो? यमुना का ये स्वभाव है कि जिसके पास सत्त्व होगा, कुछ परम वस्तु होगी उसको मेरी बाढ़ रोक नहीं पाएगी। और हमारे जूनागढ के मनोज खंडेरिया ने एक गज़ल लिखी है उसमें ऐसा है कि तुम्हारे मस्तिष्क में यदि शुद्धता है तो नदियां भी तुम्हें मारग दे देगी; पत्थर मारग दे देंगे; पदबाधांये दूर हो जाएगी।

टोपलीमां तेज लइ नीकळी पडो।
पाणीनी वच्चेथी रस्ता थइ थशे।

और साहब! हमारे कर्म में भी ऐसा सत्त्व-तत्त्व है तो कोई प्रवाह बाधा नहीं बन सकता। कठिनाईयां आ सकती है। और 'रामचरित मानस'रूपी यमुना भी यमराज के दूत पर कालिमा पोंछ देती है। कौन मारनेवाला? कौन परेशान करनेवाला?

अनंतगुणभूषिते शिवविरंचिदेवस्तुते।
घनाघन निभे सदा ध्रुवपराशरामीष्टदे।।
विशुद्ध मथुरातटे सकल गोपगोपीवृते।
कृपा जलधिसंश्रिते मम मनः सुखं भावय।।

तो हे माँ, तेरे अनंत गुणों के वर्णन तो हम कैसे कर पाये, लेकिन नव का अंक पूर्णांक है तो कम से कम हमारे कर्म के लिए और 'रामचरित मानस' जो करके दिखा रही है इस यमुना से हम प्रेरणा लेकर तेरी स्तुति करते हैं कि तुझमें अनंत गुणभूषित है।

शिव और सती कथा सुनकर लौट रहे थे। सती ने रामदर्शन करके संदेह किया। भगवान शिव ने कहा कि आप जाकर परीक्षा करके निर्णय करो। सती सीता का वेश बनाकर जाती है। सती पकड़ी गई। भगवान राम उसको पहचान गये। सती राम के पास होकर लौटी है, लेकिन अशांति लेकर लौटी है। क्योंकि राम को पाने का जो साधन होना चाहिए वो शुद्ध नहीं था। शिव ने मुस्कुराकर पूछा कि देवी, आपने परीक्षा कर ली? और सती झूठ बोली। नेत्र मुंद कर भगवान शिव ने ध्यान में देखा तो सती ने जो-जो किया वो सब देख लिया। भगवान शिव ने अंदर से जो आवाज़ आई उसके मुताबिक संकल्प किया। सती का ये शरीर जब तब रहेगा मेरा पति-पत्नी का संबंध उनके साथ नहीं होगा। शिव समाधि में डूब गये।

सत्तासी हजार साल के बाद भगवान जागे। सती गई। सन्मुख आसन दिया। उसी समय दक्ष प्रजापति के यहां सब देव जा रहे हैं। सती ने भी शिवजी को पूछा, देवगण कहां जा रहे हैं? कहा कि आपके पिता के घर यज्ञ है। मेरे साथ जरा अनबन है इसीलिए आपको नहीं बुलाई है। और जहां निमंत्रण न हो वहां जाना ठीक नहीं। भगवान ने सब प्रकार समझाया फिर न मानी तो शिवजी ने बहुत प्रसन्नता से बिदा दी। सती पिता के घर पहुंचती है। एक माँ प्रेम से मिली। सती यज्ञमंडप में जाकर देखती है, कहीं शंकर का स्थापन तक नहीं पाया! विष्णु और ब्रह्मा का स्थापन भी नहीं देखा तब गुस्सा आ गया! सती अपने शरीर को अग्नि में समाहित कर देती है। जलते समय सती ने परमात्मा से मांगा कि जनम-जनम मुझे शिव ही प्राप्त हो। हाहाकार हो गया! दक्ष की दुर्गति हुई।

सती ने दूसरा जन्म पर्वत के यहां पार्वती के रूप में, शैल के घर शैलजा के रूप में लिया। बेटी का जनम हुआ। पूरे हिमालय में उत्सव भर गया, समृद्धि बढ़ने लगी। मैं कथाओं में कहता हूं कि परिवार में बेटी का जन्म हो तो समझना बेटी तो एक है लेकिन कृष्ण की सात विभूतियां

उनके साथ मेरे घर में प्रकट हुई है। कन्या का जन्म हो तो विशेष आनंदित होना चाहिए। हिमालय समृद्ध होने लगा है। और समृद्धि तो छोड़ो लेकिन गोस्वामीजी कहते हैं, बड़े-बड़े महात्मा लोग आने लगे। इसका मतलब कि जब श्रद्धा परिपक्व बनती है तब संतपुरुष अपनेआप आने लगते हैं। बेटी बड़ी होने लगी। एक दिन नारदजी आये। नामकरण संस्कार किया उमा का। और कहा, तुम्हारी बेटी महान होगी। उसके मंदिर बनेंगे। पातिव्रत्य धर्म की आचार्या के रूप में जगत में उसकी पूजा होगी। नारदजी ने कहा, आपकी बेटी को ऐसा वर मिलेगा जो दिगंबर होगा, जटा-जूट होगा। बिलकुल अमान और निष्काम होगा! माता-पिता तो रोने लगे! पार्वती तो खुशी से भर गई कि जो वर के दोष बतायें हैं वो भगवान शंकर के सिवा ओर कोई हो नहीं सकते। प्रसन्न हुई है। पार्वती ने तप किया। तप की फलश्रुति मिली आकाशवाणी से। सती के वियोग में भगवान शिव भी विशेष विरागी बन गये। एक जगह बैठकर प्रभु का ध्यान करने लगे। भगवान प्रसन्न हुए। प्रकट हुए। शिव से वचन ले लिया कि आप शादी करो। शिव ने हां कह दी।

यहां ताड़कासुर नामक राक्षस का त्रास होने लगा धरती पर। ब्रह्माजी देवताओं को समझाने लगे कि ये ताड़कासुर से हम तभी बच सकते हैं जब शंकर ब्याह करे, उनके घर पुत्रजन्म हो और शिव का पुत्र ताड़कासुर को मार सकता है। अवसर पाते स्वार्थी देव आ गये। प्रसंशा की, बिनती की, आप ब्याह करे। भगवान शंकर ने हां कह दी। और भगवान शंकर के भूत-प्रेत शंकर को सजाने लगे हैं। भोलेबाबा की बारात तैयार हुई है। नंदी पर सवारी है। हाथ में त्रिशूल है। मृगचर्म लपेटा है। बारात हिमालय प्रदेश पहुंचती है। भगवान शंकर का रुद्र रूप जब देखा तो जितने स्वागत करने आये थे वो सब मूर्छित हो गये! महाराणी मयना सखीओं के संग दुल्हे की आरती उतारने के लिए आती है। और बिकट रूप देखते ही महाराणी मयना मूर्छित हो जाती है! आरती की थाली गिर जाती है! हिमाचल, नारद और सप्तऋषि मयना के महल में आये। नारद ने कहा कि मयना, उमा को तू अपनी बेटी मानती है, तू अपने को माँ मानती है लेकिन तू उसकी माँ नहीं है; ये तेरी माँ है। ये जगत की माँ है। सब को पार्वती के चरणों में एक नूतन प्रीति जगी। शिव के प्रति भी एक नूतन श्रद्धा जग गई। वेदरीति, लोकरीति दोनों सम्मिलित होकर बिबाहबिधि चल रही है। शिवजी पार्वती का पाणिग्रहण करते हैं। बिबाह संपन्न हुआ। कन्या की बिदाई हुई। भगवान शंकर पार्वती के संग कैलास पहुंचे। कुछ काल बीता और पार्वती ने पुत्र को जन्म दिया। कार्तिकेय का जन्म हुआ। कार्तिकेय को तुलसी ने अध्यात्म अर्थ में परम पुरुषार्थ कहा है। कार्तिकेय ने ताड़कासुर को मारा।

एक बार भगवान शिव कैलास के बेदबिदित वटवृक्ष के नीचे अपने हाथ से आसन बिछाकर सहजासन में बिराजमान है। पार्वती योग्य समय देखकर शिव के पास जाती है। शिव आदर देते हैं। रामकथा के बारे में पार्वती ने प्रश्न किया। ध्यानरस से भगवान बाहर निकले। अपने इष्टदेव राम का सुमिरन किया और कहा, आप बहुत उपकारी है। भगवान की कथा के जो निमित्त बनते हैं वो धन्यवाद के पात्र बनते हैं। राम ब्रह्म है। लेकिन वो व्यापक व्यक्ति बना, निराकार साकार बना, निर्गुण सगुण हुआ, जगत का बाप किसी का बेटा बना उसके इदमित्थं कारण तो कोई नहीं लेकिन कुछ कारण हैं, कुछ निमित्त बने हैं।

मैं व्यासपीठ पर आपके उत्तर देने के लिए नहीं, आपके समाधान के लिए हूं। उत्तर तो शिक्षक देता है, साधु समाधान देता है। उत्तर तो परंपरागत पोथीओं से आता है, किताबों से आता है, समाधान कलेजे से आता है। और समाधान दुनिया में वो ही व्यक्ति दे सकता है, जो समाधि से बोलता हो। शुकदेव ने कोई प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। शुकदेव ने परीक्षित का समाधान किया, क्योंकि शुकदेव समाधि से बोल रहा है। उत्तर तो पंडित लोग देते हैं। जिसमें बहुत लोजिक है, वो तोड़मरोड़कर आपको उत्तर दे देगा! इससे कुछ हल नहीं होनेवाला है। उत्तर नहीं, समाधान दिया जाय।

'मानस' में कुल मिलाकर रामअवतार के पांच कारण बताये हैं। वैकुंठ के दरवाजे पर जय-विजय को महात्माओं ने शाप दे दिया। दूसरा कारण सतीवृंदा का शाप। तीसरा कारण बताया नारद के शाप के कारण प्रभु को मनुष्य बनना पड़ा। चौथा मनु और शतरूपा की तपस्या के कारण वरदान के रूप में भगवान प्रकटे। और पांचवां और अंतिम कारण राजा प्रतापभानु। प्रतापभानु रावण, अरिमर्दन कुंभकर्ण और धर्मरुचि प्रधान वो दूसरे अवतार में विभीषण हुआ। रावण, कुंभकर्ण, विभीषण ने बहुत तप किया। बड़े-बड़े वरदान प्राप्त किये। वरदान का दुरुपयोग किया। पूरी धरती कांप उठी। गाय का रूप लेकर धरती ऋषिमुनियों को-देवताओं को लेकर ब्रह्मा के पास गई कि मुझे अब बचाओ! ब्रह्मा ने कहा, हम परमात्मा को पुकारें। ब्रह्मा की अगवानी में परमात्मा की स्तुति प्रकट होती है। सामूहिक पुकार को सुनकर आकाशवाणी होती है कि धैर्य धारण करो, मैं अयोध्या में अवतरित होउंगा।

अयोध्या में महाराज दशरथजी का साम्राज्य। त्रेतायुग। रघुवंश का शासन और वर्तमान सम्राट दशरथजी है। वो धर्मधुरंधर है, ज्ञानी है, भक्त है, सबकुछ है। कौशल्यादि सब रानियां उसको प्रिय है। और रानियां भी पति के अनुकूल जीवन जीती है। रानी और राजा मिलकर के भगवान की भक्ति करते हैं। ऐसा जिसका तीन सूत्रवाला दांपत्यजीवन होगा उसके घर आज भी राम प्रकट हो सकते हैं। राम मीन्स विश्राम के रूप में, आराम के रूप में, अभिराम के रूप में, आनंद के रूप में प्रकट हो सकते हैं। पहली फोर्म्यूला राम को प्रकट करने की पति पत्नी को प्रेम करता है। और पत्नी कौशल्यादि रानियां राजा का आदर करती है, सन्मान करती है। और फिर संयुक्त रूप में वो हरि भजते हैं। मेरे भाई-बहन, शादी हो जाये तो पति को इतना ही करना है, पत्नी को प्रेम करे, बस। स्त्री को प्रेम चाहिए और पुरुष उनको यदि प्रेम दे तो स्त्री उनके लिए क्या नहीं करती? आज का दांपत्य बिगड़ा है उसके कारण ये है कि एक-दूसरे के प्रति प्यार और आदर खत्म होता जा रहा है। न पुरुष प्रेम देता है, न पत्नी आदर देती है। और एक संघर्ष परिवारों में बना रहता है। और इसके कारण साथ में मिलकर न भक्ति होती है, न स्मरण होता है। और इसके कारण विश्राम का प्राकट्य नहीं होता।

दशरथजी एक बार ग्लानि में है कि मेरी इतनी रानियां फिर भी पुत्रसुख नहीं है। गुरुद्वार गये है महिपति। हमें बहुत बड़ा मार्गदर्शन तुलसी देते हैं कि कहीं से भी जवाब न मिले तो चले जाओ अपने गुरु के पास। सुख-दुःख के समिध रख दिये। अपनी पीड़ा व्यक्त की कि आप जैसे समर्थ गुरु है। क्या मेरे भाग में पुत्र सुख नहीं है? मुस्कुराते हुए वशिष्ठ बोले, राजन्, धैर्य धारण करो, एक नहीं, चार पुत्रों के पिता हो जाओगे। शृंगीऋषि को बुलाया। आचार्यपद दिया पुत्रकामेष्टि यज्ञ का। भक्ति सहित सस्नेह आहुतियां डाली गई और यज्ञनारायण अग्नि के रूप में प्रसाद की खीर लेकर यज्ञकुंड से बाहर आये। राजा ने आधा प्रसाद कौशल्याजी को, आधे से आधा कैकेयी को और एक चौथाई बचा उसके दो भाग करके कोशल्या और कैकयी के हाथ से सुमित्रा को दिलवाया। तीनों रानियां सगर्भा स्थिति का अनुभव करने लगी। प्रभु को प्रकट होने की बेला निकट आई। योग, लगन, ग्रह, वार, तिथि सब अनुकूल हो गया। नौमि तिथि है, भोमवार है, मध्याह्न का सूर्य है। प्रकृति के प्रत्येक अंग राम के आने के समय प्रसन्न है। और पूरे जगत को विश्राम देनेवाले भगवान राम जिसका पूरे जगत में वास है अथवा तो पूरा जगत जिसमें निखरा करता है ऐसा परमात्मा माँ कौशल्या के भवन में चतुर्भुज विग्रह धारण करके प्रकाश के रूप में एकदम आकार धारण करने लगे और देखते ही गोस्वामीजी की कलम एकदम गा उठी -

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्‌भुत रूप बिचारी।।

माँ को ज्ञान हुआ। सब रानियां संभ्रम दौड़कर आई! ये क्या है? आया ब्रह्म, हुआ भ्रम! अद्‌भुत बालक को देखकर रानियां आनंद से भर गई। महाराज दशरथजी को बधाई देते हुए सेवकों ने कहा, महाराज, बधाई हो, बधाई हो! राजा ने कहा, जल्दी गुरुदेव को बुलाओ, ये ब्रह्म है कि भ्रम है? क्योंकि भ्रम का निवारण और ब्रह्म की अनुभूति गुरु ही करा सकता है। ब्राह्मण देवताओं के साथ वशिष्ठजी पधारे हैं। और कहा कि राजा, आपके घर ब्रह्म बालक के रूप में रो रहा है। और उसी समय राजा परमानंद में डूब गये। और पूरी अयोध्या में राम प्राकट्य उत्सव की बधाईयां शुरू हो गई! परम पावन क्षेत्र यमुनोत्री और यमुनाजी के तट पर चल रही रामकथा में राम प्राकट्य की आप सबको बधाई हो, बधाई हो!

सत्य, प्रेम, करुणा किसीको पराधीन नहीं करता

'मानस-जमुना' श्री यमुने महाराणी को केन्द्र में रखते हुए हम कुछ बातचीत कर रहे हैं। गोस्वामीजी ने कहा कि यमगणों के मुख पर कालिमा पोतनेवाली ये यमुना है। जीते जी मुक्ति देने में ये साक्षात् काशी है। ऐसी रामकथा के संदर्भ में रामकथा का आश्रय लेकर रामकथारूपी यमुना का दर्शन तुलसी ने जिस रूप में कराया उसको केन्द्र में रखते हुए हम यमुनाजी का दर्शन कर रहे हैं। कुछ बातें पूछी गई है। बीच-बीच में उसको लूंगा। कल नव स्वभाव जो यमुना के कहे उसमें एक गुण रह गया था; आठ ही हुए थे, नववां रह गया वो बतादूं मैं।

चवँर जमुन अरु गंग तरंगा।
देखि होहि दुख दारिद भंगा।।

जमुनाजी के अनंत गुणों में पूर्णांक रूप में हमने नव पसंद किए इनमें नववां स्वभाव युनाजी का है कि जिसका दर्शन करने से दुःख और दारिद्र्य का नाश होता है। प्रसन्नचित्त से जरा गौर फ़रमाईए। अब दो बात हो सकती है। ऐसे कौन दुःख हैं कि जो यमुना के दर्शन से नष्ट होते हैं? और ऐसा कौन दारिद्र्य है कि जो यमुना के दर्शन से नष्टप्राय होते हैं? बाप! दुःख तो अनंत है। हम जैसे संसारियों के दुःख की कोई सीमा नहीं है। इस संसार को 'दुखालयं अशाश्वतं' कह दिया है। योगेश्वर की बानी में ये दुःख का आलय है। बुद्ध का भी यही मत रहा कि संसार में दुःख है। लेकिन ये कौन दुःख है? वास्तविकता क्या है? हमारे जीवन का वर्तमान क्या है? हम कौन दुःखों को फेईस कर रहे हैं? जिक्र तो उसका होना चाहिए। शास्त्र के दुःखों की गणना अच्छी है। उसकी तो चर्चा भी अच्छी है लेकिन हम जिसको फेईस करते हैं ऐसे मेरी समझ में पांच दुःख है। और गुरु की दी हुई दृष्टि से यमुना को देखा जाय तो ये दुःख से मुक्ति मिलती है।

गोस्वामीजी ने 'उत्तरकांड' में कलियुग का भूरिशः वर्णन किया है वहां कलिवर्णन में थोड़ी दुःखों की चर्चा है।

अबला कच भूषन भूरि छुधा।
धनहीन दुखी ममता बहुधा।

आज के कलियुग से भी तुलना करते जाईए कि मेरा तुलसी बिलकुल देश-काल के अनुसार बोल रहा है कि आउट ओफ डेईट है? हम कलियुग में है। हम सब पर कलिप्रभाव है। गोस्वामीजी बहनों की, माताओं की चर्चा करते हुए बोले हैं कि ऐसा कलियुग कि जिस कलियुग में मातृशरीर केवल बाल को ही आभूषण समझेंगे और गहनें कम पहनेंगे!

निर्णय आप करिएगा। ये कोई बुरी बात नहीं है। आलोचनात्मक नहीं है, ध्यान देना। लेकिन जो कलियुग का प्रभाव है, काल का प्रभाव है। कलियुग में माताओं के आभूषण केवल 'कच' यानी बाल रहेंगे प्रमुख रूप में।

अबला कच भूषन भूरि छुधा।

उसमें कहा है, बहेनों को भूख बहुत लगेगी! अल्लाह जाने! छुधा मानी भूख। भूरि मानी बहुत। तुलसी जब लिखते हैं तो गंभीरता से लिखते हैं। 'भूरि छुधा।' मीन्स मातृशरीर अतृप्त रहता है। एक पंक्ति आपको बहुत चर्चा करने के लिए मैदान दे देती है। बच्चा पेटभर खा लेता है तो भी कहे, बेटा, एक कौर ओर ले ले। बेटे ने दस कलाक नींद ले ली तो भी कहे, मेरा लाल, तू थोड़ा सो जा। अतृप्ति! कई अर्थों में 'भूरि छुधा।' मुझे प्रेम मिले ये भी उसकी एक अतृप्ति होती है। मेरा पति मुझे प्यार दे। उसको कम ही पड़ेगा। अतृप्त रहती है। अपने परिवार का काम करने में भूखी रहती है, मैं अभी ओर करूं। मेरे बच्चों के लिए, मेरे पति के लिए, मेरी सांस-ससुर के लिए, मेरे परिवार के लिए; टूट जाती है फिर भी उसको लगता है मैंने पूरी सेवा नहीं की; मैंने पूरा दायित्व नहीं निभाया है! कोई अपवाद होते हैं उसको छोड़ दीजिए।

बाप! मातृशरीर की झंखनायें पूरी नहीं होती है। ईश्वर भी न करे इतना कभी-कभी माँ करती है फिर भी 'भूरि छुधा' अतृप्त! और गुरु, माँ है। यहां जातिभेद नहीं है। गुरु हम सबकी माँ है। इसीलिए उपनिषद जब 'मातृदेवो भव।' कहती है तब मुझे तो पहले पघडी (दादा-सद्गुरु) ही दिखती है। यहां पुरुष-स्त्री का भेद नहीं है। और सद्गुरु सदा अपने आश्रित का शुभ करने में अतृप्त रहता है। सामनेवाला तो समझता है कि गुरु ने क्या नहीं किया? फिर भी गुरु अतृप्त रहता है। ये माँ है, 'भूरि छुधा।' उसको डकार नहीं आता है।

धनहीन दुखी ममता बहुधा।

पहला दुःख है धनहीनता, धन का अभाव। अर्थ अभाव ये पहला दुःख है कलि में। तो जिसके पास पैसे नहीं है वो सब दुःखी ही है क्या? स्पष्ट कहना मुश्किल है। जिसके पास कुछ भी नहीं है वो कभी-कभी बहुत सुखी दिखते हैं। धनहीनता नहीं दुःख देती है, ध्यान देना। धन की कमी दुःख नहीं देती है, धन पर रही ममता बहुधा दुःख देती है। मैं पांच ही कहूंगा। बाकी तो सबको बिलग-बिलग प्रकार के दुःख होते हैं। लेकिन पांच है पांच, हम जिसको फेईस करते हैं वो। धन की कमी दुःख है। दूसरा दुःख, पराधीनता। हमें कोई परवश कर दे इससे बड़ा कोई दुःख नहीं जग में।

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।

कोई आपको अपने स्वभाव में जीने न दे ये बहुत बड़ा दुःख है। तो हम किसी को परवश रखे, किसी को पराधीन रखे, ये बहुत बड़ी हिंसा है। आदमी को आदमी के रूप में देखना चाहिए। कोई हमारा बेटा है, कोई हमारा पति है, कोई पत्नी है, कोई बाप है। ये सब संसार का संबंध है लेकिन एक सनातन संबंध है मानवीयता। और मानवी को आज़ाद रखना चाहिए। पराधीनता बहुत बड़ा दुःख है। और सत्य के नाम से दूसरे को पराधीन कर दिया जाय, प्रेम के नाम से दूसरे को पराधीन कर दिया जाय, करुणा के नाम से पराधीन कर दिया जाय तब तो ये बहुत भयावह है। अत्यंत भयावह है। कल कथा पूरी हुई तब नीलेश ने ये गीत बजाया, मैं जाते पंक्ति सुन रहा था।

तुम अगर भूल भी जाओ, तो ये हक है तुमको।
मेरी बात और है मैंने तो महोब्बत की है।

मैं पराधीन न करूं तुझे! साहिर लुधियानवी में सीधा भरत उतरा है! सत्य, प्रेम, करुणा किसी को पराधीन नहीं करता। जो पराधीन करे वो प्रेम नहीं। हो सकता है राग हो।

चातकु रटनि घटें घटि जाई।
बढ़े प्रेमु सब भांति भलाई।।

साहिल मैं भरत उतरा है। 'तुम अगर भूल भी जाओ तो ये हक है तुमको।' क्या आज़ादी प्रदान कर दी! कोई प्रेम करनेवाला इतनी आज़ादी दे सकता है कि तुम मुझे भूल जाना! अहमद फ़राज़साहब की गज़ल है -

कितना आसां था तेरे हिज्र में मर जाना।
फिर भी एक उम्र लगी जान से जाते-जाते।
उसकी वो जाने उसके पास वो वफ़ा था कि नहीं,
तुम फ़राज़ अपनी तरफ से तो निभाते जाते।

तो पहला दुःख है धनहीनता। दूसरा, पराधीनता। तीसरा दुःख है शारीरिक स्वास्थ्य का अभाव। शरीर की किसी न किसी रीत की पीड़ा। यद्यपि जिन्होंने अपने चैतन्य को जिस्म को बिलग कर दिया है इसको पीड़ा नहीं होती। लेकिन ये तो व्याख्यायें होती है। रुह को जिस्म से बिलग करना व्याख्या में खूबसूरत लगता है। दूर करना कठिन है। और जो लोग अपनी आत्मा को जिस्म से बिलग भी कर देते हैं वो भी जिन्होंने प्रेम और महोब्बत को धर्म के रूप में स्वीकारा है वो क्षण के लिए भी जिस्म कुबूल कर लेते हैं।

अमीर खुशरो लखनौ था। निझामुद्दीन ओलिया का देहांत हो गया। उसको वहां खबर मिली। वो तीव्र गति से आ रहा है क्योंकि सुना है कि मुर्शीद जा रहा है। पागल की तरह बाल खींच रहा है, सीना कूट रहा है अमीर खुशरो। कुछ बातें रह गई है। एक फ़कीर की डायरी से जो मुझे मिला वो मैं आपको बता रहा हूं। तो वो पहुंच जाता है तब तक तो निझामुद्दीन ओलिया निर्वाण हो चुके थे। कई उसके शार्गीद चुपचाप झार-झार रो रहे थे। ज्योति बूझ गई! और अमीर आता है। सभी बंदों को अमीर ने एक प्रार्थना की, मुझे पांच मिनट दो। मेरे गुरु से मुझे बात करनी है। 'अमीर, तू पागल तो नहीं हो गया? ये जा चुके हैं!' 'मेरे साथ बात किये बिना ये नहीं जा सकता।' भरोसा देखिए; गुरुनिष्ठा देखिए; मुर्शीद की महोब्बत देखिएगा। और बहुत निजी आदमी था। लोगों ने मान लिया कि बात सही भी हो सकती है। सब इधर-उधर गये और अमीर ने उपर ओढ़ाया हुआ वस्त्र हटा दिया था। और पुकारा गुरु को कि ऐसे नहीं जाते! जाना था तो कुछ बोलके जाते! अब इतिहास उसको कैसे कुबूल करे? लेकिन एक फ़कीर की डायरी कुबूल करती है। और इस फ़कीर भी गंगा की नौका में मेरे बसेरे के आसपास रात के दो बजे घूमता रहता था। दो-तीन बार अपने मुर्शीद को पुकारा और कहते हैं, निझाम ने आंखें खोली। खड़े हुए साहब! और अमीर खुशरो ने कहा कि आप मुझे कई पूछते रहे, खुशरो, तेरी इच्छा क्या है? मैं नियति के बीच में नही आउंगा, लेकिन आज मुझे एक बार कहने दो कि आपकी अंतिम इच्छा क्या है? जवाब नहीं दिया है साहब! बाहें पसारी। अमीरी खुशरो को गले लगाया और उसके माथे के बालों में प्यार किया और निझाम गिर गया। बुद्धपुरुषों को भी कोई न कोई ख्वाहिश होती है। और इतने आश्रित होते हैं उस पर वो अपनी आखिरी संपदा उडैल देता है।

गुरु वो है मेरी समझ में जो कभी भी आश्रित को पराधीन न करे। क्योंकि पराधीन करना ये प्रेम का स्वधर्म नहीं है। तो तीसरा दुःख है शारीरिक बीमारियां, हम जैसे लोगों के लिए। हम देहधारी है। हम आत्मा और देह को बिलग नहीं कर पाते हैं। कोई निझामुद्दीन कर सकता है कि कुछ क्षणों के जिए रुह जिस्म में आकर फिर बोल दिया। वर्ना असंभव है।

चौथा दुःख है; जो हम फेईस कर रहे हैं ऐसे ही दुःखों में आपके सामने पेश कर रहा हूं, वो दुःख है पारिवारिक दुःख। किसीको बेटे का दुख, किसी को बाप का दुःख, पति को पत्नी का दुःख, पत्नी को पति का दुःख, सांस-बहु का, भाई-भाई का। एक पारिवारिक दुःख हमारे जीवन की वास्तविकता है, हकीकत है। पांचवां और अंतिम दुःख हरि की विस्मृति। सबसे बड़ी पीड़ा यदि दुनिया में कोई है तो वो है हरि का विस्मरण। और मेरी एकमात्र मांग मेरे देश की युवानी के पास है। मैं बार-बार कहूंगा, चौबीस घंटों माला लेने की जरूरत नहीं है। लेकिन जब कोई काम शेष न हो और नींद न आती हो तब दो मिनट सही मालिक को सिमरो। तेईस घंटे और पचपन मिनट जो निरंतर हमारा खयाल करता है उसको पांच मिनट खयाल में लो। रिचार्ज हो जाओगे।

चवँर जमुन अरु गंग तरंगा।
देखि होहि दुख दारिद भंगा।।

यमुनाजी ये दुःख को नष्ट करती है। केवल दर्शन। अब ये यमुनाजी का दर्शन करो तो ये दुःख जाते हैं लेकिन मैंने पहले ही आपसे कहा कि दर्शन करते समय गुरु की रज से मिले विवेक से दर्शन करना पड़ेगा। अपनी सामान्य चक्षु काम नहीं कर पाएगी। और वैसे ये 'रामायण' भी यमुना है। उसका भी दर्शन करने से दुःखों का अंत हो जाता है। तो ये नववां स्वभाव है यमुनाजी का कि दर्शन से दुःख जाये। दूसरा 'दारिद।' दो शब्द यहां प्रयुक्त किये गये हैं कि यमुनाजी के दर्शन से दुःख और दारिद्र्य नष्ट होता है।

ज्यादा से ज्यादा हम समझे हैं कि धन न होना वो दरिद्रता है। विश्ववंद्य गांधीबापू ने दरिद्र को नारायण कहा है, 'दरिद्र नारायण'; ठीक है? और मेरी व्यासपीठ ये कहना चाहती है कि कुछ बस्तुओं का अभाव ही यदि दरिद्रता है तो कई लोगों में वफादारी नहीं है उसको भी दरिद्र समझना चाहिए। कई लोगों में इमानदारी नहीं है, दरिद्र समझना चाहिए। कई लोगों में महोब्बत नहीं है, दरिद्र समझना चाहिए। कई लोगोंमें परस्पर प्रीत नहीं है, दरिद्र समझना चाहिए। किसी बस्तुओं का अभाव को ही दरिद्रता का लेबल लग जाये तो हम कई अभावों से ग्रस्त है; हम दरिद्र है।

नाथ आजु मैं काह न पावा।

मिटे दोष दुख दारिद दावा।।

आज मुझे क्या नहीं मिला? केवट ने भगवान के चरण पकड़कर कहा; मेरा दोष मिट गया; मेरा दुःख मिट गया; मेरा दारिद्र्य मिट गया और मेरा संताप मिट गया। तो दारिद्र्य का मतलब है; कई लोग के पास पैसे तो बहुत होते हैं लेकिन वचन के दरिद्र होते हैं; वाणी के दरिद्र होते हैं। कभी ठीक बोले ही ना! ऐसा अभद्र! ऐसा उलटा बोलेगा! तो जिसके पास धन नहीं उसको दरिद्र नहीं समझना चाहिए। जिसको बोलना नहीं आता वो दरिद्र। जिसको वाणी का विवेक नहीं वो दरिद्र है। मैं तो कहूंगा जिसके पास आंसू नहीं वो दरिद्र है। प्रेम मारग में तो यही संपदा है। और इसका मतलब ये नहीं कि आंसू गिरे ही। हृदय जिसका द्रवीभूत न हो वो दरिद्र है। कई लोगों में वचन की दरिद्रता नहीं भी होती है; बहुत प्यारे बोल बोलते हैं। खुशामतखोरों में ये बहुत होता है। बहुत प्यारे बोल बोलते हैं। लेकिन विचारों की दरिद्रता होती है। अंदर विचार काम करता है कि अच्छे-अच्छे बोल सुनाकर पीछे से उसको धोखा दिया जाय! वो है विचारों का दारिद्र्य। तो विचार का दारिद्र्य; वचन का दारिद्र्य।

तीसरा वर्तन का दारिद्र्य। कोई अच्छा वर्तन करता हो और उसमें कई प्रकार के दोष निकालकर उसको वहां रोक देना अथवा तो उसे पीछे धकेल देना, वर्तन का दारिद्र्य माना गया है। चौथा दारिद्र्य जीवन के दृष्टिकोण का दारिद्र्य है। कुछ लोग है, अच्छा नहीं देख पाते हैं! यमुनाजी का दर्शन करने से, तुलसीदासजी की जो जमुना है ये 'मानस-जमुना' है उससे ये फायदे बताये गये हैं कि वाणी का दरिद्र्य मिटेगा, विचारों का दारिद्र्य मिटेगा, वर्तन का दारिद्र्य मिटेगा, दृष्टिकोण बदलेगा। लेकिन चाहिए उत्सुकता। एक उत्साह चाहिए।

तो 'मानस-जमुना' का ये नववां स्वभाव है कि जो इस तरह दर्शन करेंगे उसका दुःख और दारिद्र्य भंग हो जाएंगे, मिट जाएंगे। तो श्रीमन् महाप्रभुजी की जो जमुना है वो 'अनंतगुणभूषिते' है। अब जगद्गुरु शंकर की यमुना के बारे में थोड़ी बातचीत करें।

मधुवनचारिणि भास्करवाहिनि

जाह्नविसंगिनि सिन्धुसुते।।

मधुरिपुभूषिणि माधवतोषिणि

गोकुलभीतिविनाशकृते।

जगदघमोचिनि मानसदायिनि

केशवकेलिनिदानगते।

जय यमुने जय भीति निवारिणि

संकटनाशिनि पावय माम्।।

शंकराचार्य ने दो 'यमुनाष्टक' लिखे हैं। दोनों बहुत अद्भुत है। इनमें से एक 'यमुनाष्टक' का ये टुकड़ा जो है। तो शंकराचार्य उसको कहते हैं कि हे यमुना, आप मधुबनचारिणी है। मधुवन से गुज़रती है। ध्रुव ने तपस्या की है यमुना के तट पर मधुवन में। ऐसा जो हमने सुना है, पढ़ा भी है। यमुनाजी मधुवन से गुजरती है, मधुवन को कृतकृत्य करती है। और ये 'मानस-यमुना' जो है उसमें भी मधुवन का जिक्र है।

तब मधुवन भीतर सब गयउ।

श्री हनुमानजी लंका का दौरा सफल करके लौटे और मित्रवृंद खुश हो गये और सब सुग्रीव का जो मधुवन है उसी मधुवन में जाते हैं और फल लगे हैं। तो तुलसी की जो 'मानस-जमुना' है उसमें भी मधुवन का स्मरण गोस्वामीजी ने किया है ऐसा मैं उसके साथ विनम्रता से जोड़ना चाहता हूं। दूसरा, 'भास्करवाहिनि'; ये सूर्यमुखी है। सूरज बहुत बड़ा बाप है। इसीलिए हमने भारतीयों ने अच्छा कहा, 'सूरजदादा।' दादा उसको कहते हैं, इनका परिवार बहुत बड़ा होता है। ये सूर्य का परिवार। ये सूरत में जो नदी

बहती है तापी वो सूरजकन्या है। कर्ण सूर्यपुत्र है। शनिदेव सूर्यपुत्र है। यमराजा सूर्यपुत्र है। ये यमुनाजी सूर्यपुत्री है। सुग्रीव सूर्यपुत्र है। तो ये दादा का बहुत बड़ा-चौड़ा विशद परिवार है।

तो 'भास्करवाहिनि।' 'रामचरित मानस' एक ऐसी यमुना है कि सूर्यवंश का विस्तार करती है, उसका वहन करती है। सूर्य से लेकर ये वंश चला और आज ये राम तक हम उसको गा रहे हैं। इसीलिए एक अर्थ में ये 'रामचरित मानस' यमुना भी भास्करवाहिनी मानी जाय। 'जाह्नविसंगिनि।' ये जाह्नवी यानी कि गंगाजी की संगिनी है, सखी है। और 'मानस' में तो अभी भी मैंने वो पंक्ति ली, 'चवँर जमुन अरु गंग तरंगा।' गंगा-यमुना सखी है। लेकिन संप्रदाय के आग्रह कभी-कभी ऐसा भी निवेदन आ पड़ा कि ये यमुना गंगा को मिली तब गंगा ज्यादा शुद्ध हो गई! ऐसे निवेदन नहीं करने चाहिए। ये फनी निवेदन है! आप जरा बीमार महसूस होते हो! ये गंगा ने जमुना को ज्यादा पवित्र की या जमुना ने गंगा को ज्यादा पवित्र की ऐसे निवेदनों से बचे! गंगा अपनी जगह गंगा है, मेरी जमुना अपनी जगह जमुना है। ये तुलना में हम क्यों जाते हैं? केवल बौद्धिक पांडित्य! लेकिन गये हैं लोग! गये हैं तो गये हैं, हम इसके पीछे नहीं जाएंगे। किसीकी तुलना मत करो। अपनी बात ज्यादा पुष्ट करने के लिए किसी को न्यून मत बताओ। लेकिन कुछ विचारधारा जब जड़ता के वर्तुळ में आ जाती है तब ऐसा होने लगता है। खेर! छोड़ो। ऐसी व्याख्या जमुना को भी अच्छी नहीं लगती। गंगा और यमुना में भेद मत किया जाय। एक चरणजा है, एक अश्रुजा है, नेत्रजा है। दोनों मिले हुए हैं। और तुलसीदासजी तो दोनों सखियों को साथ-साथ में क्रीडा करते देखते हैं 'मानस' में -

देखत स्यामल धवल हिलोरे।

पुलक सरीर भरत कर जोरे।।

राम जितने गंगा से प्रसन्न है इतने ही यमुना से प्रसन्न है। भेद हम लोग करते हैं। आगे 'सिंधुसुते।' हरेक नदी समुद्र की बेटी है एक अर्थ में क्योंकि समुद्र का जल भाप बनता है। भाप के कारण बादल बनते हैं। बादल फ़टते हैं, टकराते हैं और फिर नीर बहता है। फिर पहाड़ पर से नीचे आती है और नदीओं का रूप धारण करती है। लेकिन ये सूर्यपुत्री है और सिंधुसुते ये तो जरा असमंजसता हो जाएगा। लेकिन समुद्र की बेटी यमुना कहने में भी सूर्यपुत्री ही सिद्ध होता है। क्योंकि समुद्र के बिना, सूर्य के ताप के बिना भाप नहीं बनता। इसीलिए मूल में तो सूर्य ही है। 'मधुरिपुभूषिणि'; मधुकैटभ का वर्णन 'रामचरित मानस' में आया है। मधु नामका जो असुर है उसके रिपु परमात्मा भगवान, उसकी तू भूषिणी है। हे यमुनाजी, तू भगवान का आभूषण है। 'माधवतोषिणि'; आप भगवान कृष्ण को संतुष्ट करनेवाली है। कृष्णप्रिया है यमुनाजी। भगवान को प्रसन्न करती है। रामकथा भी ऐसा ही काम करती है। 'रामायण' के लिए तो गोस्वामीजी ने वहां तक लिख दिया -

सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की।

ये तो मुक्तिरूपी नारी का भी आभूषण है। 'गोकुलभीतिविनाशकृते।' गोकुल में जब कृष्ण थे उस समय जो भीतियां आई, विघ्न आये। पूतना से लेकर जो गोकुल पर विपत्तियां आई, जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं, गोकुल भीति का विनाश करनेवाली हे यमुनाजी, तू है। तो 'रामचरित मानस'रूपी जमुना किस गोकुल भीति का निवारण करती है? राम की लीला गोकुल गांव में नहीं है। यहां अर्थ लगाना होगा, 'गो' मानी इन्द्रिय। हमारी इन्द्रियों

हम किसी को परवश रखे, किसी को पराधीन रखे, ये बहुत बड़ी हिंसा है। आदमी को आदमी के रूप में देखना चाहिए। कोई हमारा बेटा है, कोई हमारा पति है, कोई पत्नी है, कोई बाप है। ये सब संसार का संबंध है लेकिन एक सनातन संबंध है मानवीयता। और मानवी को आज़ाद रखना चाहिए। पराधीनता बहुत बड़ा दुःख है। और सत्य के नाम से दूसरे को पराधीन कर दिया जाय, प्रेम के नाम से दूसरे को पराधीन कर दिया जाय, करुणा के नाम से पराधीन कर दिया जाय तब तो ये बहुत भयावह है। सत्य, प्रेम, करुणा किसी को पराधीन नहीं करता।

का एक समूह है 'गोकुल', उसमें जो भीति प्रविष्ट कर जाती है। हे 'रामायण', यमुना, तू हमारी इन्द्रिय भीति को नष्ट करती है।

अब पांच इन्द्रियों की चर्चा करके मैं आगे बढ़ जाउं। आंख 'गो' है। इन्द्रिय है आंख। जीभ इन्द्रिय है। ये चमड़ी इन्द्रिय है। कान इन्द्रिय है। नाक इन्द्रिय है। ये जो 'गोकुल' है, इन्द्रियों का परिवार है, संघ है। आंख की भीति क्या है साहब? सबकी आंखों के बारे में ये नहीं कहा जाता है। लेकिन साधुपुरुष की आंख को एक भीति है कि मेरी दृष्टि से कहीं सत्त्व-तत्त्व का शिकार न हो जाये। और 'मानस'रूपी यमुना साधु की आंख की भीति को तोड़ती है कि तेरी आंख गुरुचरणरज से दीक्षित है; भीति मत कर; हर मंज़र देख। देखना बुरा नहीं है। देखना कोई पाप नहीं है। क्योंकि इन्द्रियों का दमन करने से कोई साफल्य नहीं मिलता है। दमन नहीं, इन्द्रियों को दीक्षित किया जाय; संस्कारित किया जाय। तो 'रामायण'रूपी यमुना हमारी आंखरूपी इन्द्रिय की भीति नष्ट करती है। कान; अब संसार में हम रहते हैं, न चाहो तो भी किसीकी निंदा कोई शुरू कर दे तो कान को सुनना पड़ता है। तो कानरूपी इन्द्रिय की भीति है दूसरों के अपवाद को न इच्छते हुए सुन लेना। 'रामायण' का आश्रय करेगा उसकी श्रवण की भीति नष्ट हो जाएगी। क्योंकि उसको आदत हो जाएगी; दूसरा अनुकूल नहीं होगा। एक तीसरी इन्द्रिय हमारा नाक कहीं बदबू न ग्रहण करे। परमात्मा की कृपा की महक पसंद करे, पहचाने। तो घ्राणेन्द्रिय की भीति भी 'मानस-यमुना' मिटाती है। जीभ इन्द्रिय है। कहीं दूसरों का अपवाद न हो जाय। हरिनाम लिया जाय; भगवद्चर्चा की जाय। भूल से भी जबान ऐसा-ऐसा न बोल दे इस भीति को भी 'मानस-यमुना' मिटा देती है। और 'चर्म' यानी हाथ यानी जो स्पर्शेन्द्रिय है जो किसी को छूता है। हाथ की भीति है कि हमारे हाथ कहीं कोई ऐसी हरकत न कर दे। रामकथा की यमुना हमें इन गोकुल भीतिओं से मुक्त रखता है। इन्द्रियों के समूह के जो बिलग-बिगल भयस्थान है इससे मुक्त करती है।

'जगदघमोचिनि'; यमुनाजी जगत के पाप को नष्ट करनेवाली है। और 'रामायण' के लिए तो ये कहने की जरूरत नहीं। 'रामचरित मानस' ये कलिमल, मनोमल ये सब कुछ धो देती है। 'मानसदायिनि'; मानसदायिनी का अर्थ है मन इच्छित फल देनेवाली। अब यहां जरा सोचना पड़ेगा कि आप 'रामायण' का पाठ करे और आपके मन में कोई मनोरथ हो कि ये सिद्ध हो जाए और बहुधा सिद्ध न भी हो। लेकिन इस विश्वास से पाठ करना चाहिए कि मैं चाहूं तब न भी हो, लेकिन इच्छा की है तो मालिक देर से भी कुबूल कर लेगा। 'मानसदायिनि' का मतलब है कि कभी न कभी हमारे हित में जो होगा, हमारे परमहित में जो होगा ऐसा 'मानस' पूरा कर देगी। 'केशवकेलिनिदानगते'; भगवान कृष्ण की क्रीड़ा, जो-जो लीलायें यमुना के तट पर भगवान कृष्ण ने की है, हे यमुनाजी, केशवकेलि का तू आश्रय स्थान बनी, तेरे तट पर कृष्ण ने ये सब क्रीडायें की है। तू इसकी क्रीड़ा की आश्रयस्थान है। 'रामचरित मानस' भी भगवान राम की क्रीड़ा का आश्रयस्थान है। आगे कहते हैं -

जय यमुने जय भीति निवारिणि।

हे यमुनाजी, आपकी जय हो। शंकराचार्य कहते हैं, हे यमुना! तेरी जय बुलाते हैं तो हमारी भी जय हो जाती है। 'जय यमुने जय भीतिनिवारिणि संकटनाशिनि पावय माम्।' हमारे भय को मिटानेवाली, संकट को दूर करनेवाली हे यमुनाजी, मुझे पवित्र करो, मुझे पावन करो। ऐसा शंकराचार्यजी कहते हैं।

तो, रामकथा भी जयजयकार करने योग्य है। इसकी जय करने से हमारी जय हो जाती है। और ये संकट हरनी तो है ही। भीति हरनी है। निष्ठा हो तो तुम्हारी जोली में 'रामचरित मानस' हो तो तुम्हें किसी से डरने की जरूरत नहीं। ये भीति तोड़ देती है और संकट हरती है। और संकट के कुछ प्रकार है। एक संकट है धर्मसंकट। एक संकट है प्राणसंकट। एक संकट है राष्ट्रसंकट। एक संकट है कौटुम्बिक संकट। कुछ बिलग-बिगल 'संकट' शब्द जहां हम प्रयुक्त करते हैं ये सभी संकटों को मिटानेवाली रामकथा ये भी यमुना के रूप में संकट को मिटाती है।

कल हम सबने मिलकर के भगवान राम के प्राकट्य का आनंद लिया। महाराज अवधपति के घर चार पुत्र की प्राप्ति हुई। एक महिने तक उत्सव अखंड चला। चारों भाईयों का नामकरणसंस्कार किया वशिष्ठजी ने।

वशिष्ठजी ने कहा, राजन्, ये तुम्हारे चार पुत्र नहीं है, वेद के सूत्र है। यज्ञोपवित संस्कार दिया गया। फिर गुरु के आश्रम में चारों भाई पढ़ने गये। अल्पकाल में विद्या प्राप्त की है। और फिर एक दिन विश्वामित्र आये। वैसे तो 'रामकथा' पूरी समर्पण की ही कथा है। लेकिन स्पष्ट रूप से समर्पण की धारा इस प्रसंग से शुरू होती है। एक बार विश्वामित्र मुनि मारीच और सुबाहु द्वारा यज्ञकर्म पूरा नहीं होता था तो याचना के लिए अयोध्या आते हैं। उसने मांग की राम-लक्ष्मण की और समर्पणयज्ञ शुरू हुआ। महाराज दशरथजी ने पुत्रों को समर्पित कर दिया। कौन पहुंचेगा जानकी तक? जिसका प्रारंभ समर्पण से हुआ हो। एक बहुत बड़ा खंभा है समर्पण। तो दोनों पुत्र दे दिये। आगे गई समर्पण की यात्रा। जा रहे हैं और ताड़का एकदम आई क्रोध करके और भगवान विश्वामित्र के संकेत पर ताड़का को निर्वाण देते हैं। ताड़का ने भी समर्पण किया। ये दूसरा समर्पण अध्याय है। पहला अध्याय दशरथ समर्पण। दूसरा अध्याय ताड़का प्राण समर्पण कर देती है। फिर आगे गये तो विश्वामित्र को लगा कि क्या सब समर्पण करे वो मैं देखता ही रहूं? मेरे पास कुछ नहीं है? तो अपने पास जो आयुध थे, विद्या थी, राम को समर्पित कर दी। फिर गौतम ऋषि के आश्रम में पहुंचे। वहां जिस नारी भूल से भी भोगवादी बन गई थी; तुलसदासजी अहल्या का तात्त्विक अर्थ करते हैं कुमति-

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारि।।

जड़मति, जड़बुद्धि किसको कहे? कि जो बुद्धि परख न पाये। इन्द्र को पहचान न पाई ये? और भोग में लिप्त हो जाए ऋषिपत्नी होते हुए भी! ये सुमति का लक्षण नहीं है, ये कुमति का लक्षण है। जब तक जड़मति होती है तब तक हम पहचान नहीं पाते हैं। मति जब दिव्य हो जाती है तो तुरंत हम पहचान लेते हैं। ये समर्पण का चौथा अध्याय है और वो है जड़मति को परमात्मा अपने चरणों का समर्पण करते हैं। समर्पण का चौथा अध्याय है, राम चरणदान कर रहे हैं।

परसद पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।

अहल्या बोली कि मैं अपवित्र नारी हूं; बुद्धिमलिन; तो स्वाभाविक ये अपवित्र है, मलिन है; ये वाक्य बिलकुल स्तुति में ठीक है। और प्रभु जगपावन भगवान जगत को पावन करनेवाले हैं ये भी बिलकुल परफेक्ट है। लेकिन अहल्या स्तुति में कहती है, 'रावन रिपु जन सुखदायी।' आप रावण के दुश्मन है, जन सुखदायी है। यहां प्रोब्लेम आता है। ये ठीक है पंक्ति क्या? 'रावण रिपु' तो राम बहुत देर के बाद बनेंगे! अभी तो कौशल्यानंदन है, पतितपावन है। अब धनुष तोड़ने के बाद सीतापति बनेंगे। तो भगवान तो अभी तो ये है। 'रावण रिपु' तो जब जानकी को चुरा ली गई तब रावण रिपु हुए हैं। पहले तो नहीं है। और अहल्या कैसे जान गई कि आप रावण रिपु है। ये पंक्ति बड़े-बड़े रामायणीओं को परेशान करती है! लेकिन कोई परेशानी की जरूरत नहीं है। मति मलिन थी तब सामने इन्द्र गौतम के रूप में आया; पहचान न पाई। मति निर्मल हो गई तो भविष्य भी दिखते लगा कि तू रावण रिपु है। समर्पण का पांचवां अध्याय है, 'बार बार हरि चरन परि।' अपना समग्र विग्रह रघुपति के चरण में समर्पित कर दिया। अहल्या का उद्धार करके मेरे ठाकुर आगे बढ़े गंगाजी के पास। और गंगा स्वयं समर्पण की कथा है। गंगा ऊतरी है, समर्पण किया है गंगा ने पृथ्वी को, त्रैलोक को धन्य करने के लिए। पूरी समर्पण की गाथा है अवतरण की और भगवान राम स्नान करके ब्राह्मणों को दान देते हैं वो भी समर्पण की कथा है। ये आगे का अध्याय है। फिर भगवान राम जनकपुर पहुंचते हैं। और वहां महाराज जनक स्थंभित हो गये। विश्वामित्र को पूछने लगे हैं, ये दो बालक कौन है? समर्पण का ये नववां अध्याय कि जिसका मन बड़ी-बड़ी बेंक में जिसने एफ.डी. किया था; ब्रह्मबेंक में जिनने मन एफ.डी. किया था, वहां से उठा लिया और समर्पण किया।

बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा।

बड़ी बेंक से अपनी पूरी संपदा उठाकर महाराज जनक ने -

सहज बिरागरूप मनु मोरा।
थकित होत जिमि चंद चकोरा।।

मेरा मन तुझे समर्पित। एक के बाद एक समर्पण की यात्रा आगे बढ़ती है। जनकपुर में प्रभु का निवास होता है। दोपहर का प्रभु ने भोजन किया है। अब आप भोजन करियेगा। यमुनामैया का प्रसाद ग्रहण कीजिए।

यमुना परमपावन है, सबका स्वीकार करती है

'मानस-जमुना', जिसका गायन-श्रवणपान हम सब कर रहे हैं। उसके बारे में कुछ बातें जो है उसको पहले उठाउं। एक जिज्ञासा तो ये है, माँ गंगा का वाहन मगर है। और माँ यमुनाजी का कछुआ है। पूछा गया है कि उसके बारे में कुछ बातें हो। गुजरात में आपने कभी देखा हो तो एक माताजी का नाम है खोडियार माँ। और खोडियार माँ का वाहन भी मगर बताते हैं। जहां प्रवाह होता है वहां उसके साथ जलचर भी चलते हैं। प्रवाह जलचर का जीवन है। और जलचर के कारण प्रवाह शुद्ध रहता है। ये वैज्ञानिक सत्य है। कई जलचर हिंसक है। मगर हिंसक है। लेकिन ईश्वर की सृष्टि में कुछ अकारण नहीं है। इसीलिए चलचर चाहे हिंसक भी हो, जल की शुद्धि का कारण भी है। इसीलिए गंगा में उसका वाहन मगर दिखाया गया तो उसके पीछे कुछ आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, प्राकृतिक कारण है।

यमुनाजी का वाहन कछुआ है। यमुनाजी जितनी कृष्ण के साथ जुड़ी हुई है इतनी गंगा शंकर के साथ जुड़ी नहीं है। सिर पर जरूर है लेकिन निकलने के बाद गंगा और शंकर का बहुत मिलन नहीं है। बहती जरूर है। हरिद्वार जाती है, प्रयाग जाती है। बहुधा वो वैष्णव स्थानों से गुज़रती है। गंगाजी 'विष्णु नखनिर्गता' होते हुए भी यमुनाजी को कृष्ण का साहचर्य प्राप्त हुआ है, तुलना में गंगा में नहीं है। और शायद यमुनाजी के वाहन के रूप में कछुए को रखना इसका मतलब ये है कि कछुआ एक अवतार है। यमुना की निरंतर गति अवतार के साथ है। चाहे वो कृष्णरूप में कृष्णप्रिया हो, या तो कछुए के साथ वो विहरती हो।

कल हमने जगद्गुरु शंकराचार्य की बोली में देखा, 'गोकुलभीतिविनाशकृते', यमुना क्या है? गोकुल की भीति का विनाश करनेवाली है। और गोकुल में उस समय कृष्ण के बचपन में जो विघ्न आये उसको यमुनाजी ने निवारा। और फिर हमने चर्चा की कि गोकुल मानी इन्द्रियों का संग्रह। और हमारी इन्द्रियों के समूह में जो भीति है; भीति इन्द्रियों की कब है बाप? जब इन्द्रियां बहिर्गमन करती है। और कछुआ है प्रतीक इन्द्रियों के समूह को समेटने का। कछुआ निरंतर दिखाता है कि तुम्हारी गोकुल भीति से तुम्हें बचना है तो तुम्हारी इन्द्रियां जितनी अंतर्मुख हो। ये कछुआ उसका प्रतीक है। इसीलिए यमुनाजी निरंतर ये बोध देती है। यदि कृष्णकृपा, यमुनाकृपा से बहिर्मुखता भी हमारी ब्रह्ममय रहे तो कोई बात ही नहीं। लेकिन हम जीव है, हम जंतु है।

हमारी बहिर्मुखता होते ही उसमें विकार सवार हो जाते हैं।

कोई ये कहे कि हम आंख से किसीको देखते हैं तो हम उसकी सुंदरता नहीं देखते, कृष्ण ही देखते हैं। ये अच्छा भाव है। लेकिन ये कोई-कोई में होता है, सब में नहीं होता है। ये प्रवचन सार्वभौम है, अनुभव सार्वभौम नहीं है। और महत्त्व है अनुभव का। पांडित्य का महत्त्व नहीं है। शंकर भगवान ने कथा की कब पोथी रखी होगी? मुझे आप एक चित्र तो बताओ ऐसा! मेरे भुशुंडि ने जब रामकथा कही तब उसके सामने पोथी होगी? एक चित्र तो बताओ। अथवा तो कोई चित्रकार हिंमत तो करे, एक तसव्वुर प्रकट करे, एक कल्पना प्रकट करे; हिंमत नहीं है, किसी की! क्योंकि वहां पोथी पांडित्य नहीं है। हमें पोथी रखनी पड़ती है। और पोथी रखने का मेरा आनंद है। 'पोथीने परतापे क्यां-क्यां पुगिया?'

कछुआ प्रतीक है अंतर्मुखता का। आपने देखा होगा, कछुए को जब आदमी छूता है तब तरंतु वो सिकुड़ने लगता है, क्योंकि छूनेवाले ने अपनी एक बहिर् इन्द्रिय का स्पर्श किया उसको। और दोनों का मेल हो सकता है तो विकार प्रकट हो सकता है इसीलिए कछुआ तुरंत अपनी इन्द्रियों को समेट लेता है। क्योंकि धारा रुक जाये। ये संक्रामकता नष्ट हो जाये। यमुना बहुत महत्त्व की बात बता रही है कछुए के द्वारा।

दूसरी जिज्ञासा, 'बापू, यहां मंदिर में हर जगह यमुनाजी के द्विभुज के दर्शन है। एक हस्त में कमल की माला, एक हस्त में पूर्ण विकसित कमल की कली। कहीं माँ यमुनाजी का यहां चतुर्भुज स्वरूप में दर्शन किये। तो आप कुछ कहेंगे?' 'गर्गसंहिता' में भी यमुनाजी कवच है वहां भी यमुनाजी के चतुर्भुज स्वरूप के ध्यान करने की सूचना है। माँ के दो हाथ प्रकट है, दो हाथ अप्रकट है। मूर्ति में उसको प्रकट कर दिये गये। अब दो हाथ अप्रकट है वो कौन? कोई यमुना में गिर जाये तो उसको बचानेवाले दो हाथ अप्रकट हाथ है। और मैं आपको श्रद्धाजगत के सत्य की ओर लिये चलूं कि यमुना में कोई गिर जाये, तैरना न आये और डूब जाये, कोई सहारा न हो, फिर भी दैवयोग से जो बच जाये तो समझना यमुना के दो गुप्त हाथों ने ये कृपा की है।

वसुदेवजी कृष्ण को लेकर जब गोकुल आये तो दो हाथ से उसने वो टोपला उठाया था। उसमें भी विग्रह विराजमान है। और उसी समय यमुना तो बह रही थी। यमुना रास्ता न दे तो कैसे पार उतरे? वसुदेव के पास तो चार हाथ नहीं है। वो तो ऐसे दो हाथ से लिए हुए जा रहे हैं। ये प्रवाह उसको पकड़ न ले इसीलिए यमुनाजी ने दो गुप्त हाथों से जाने दो, जाने दो, जाने दो। ये दो हाथ गुप्त हाथ है। और ध्यान देना, बुद्धपुरुषों के पास केवल दो हाथ ही नहीं होते हैं। प्रत्येक बुद्धपुरुष चतुर्भुज होता है। दो स्थूल, दो सूक्ष्म हाथ होते हैं। हम चमत्कार न मान ले इसीलिए मानवरूप में वो द्विभुज रहता है। कोई भी बुद्धपुरुष चतुर्भुज होता है। आपने देखा होगा कि हमारे अवतारों में कहीं भी वर्णन न हो अवतार के चार हाथ का वहां भी कभी-कभी हमारे मनीषियों ने चतुर्भुज अंकित कर दिये हैं। ये है मेसेज, ये है संकेत। जमुना के गुप्त हाथ हमें बचाये हुए हैं। और ये हाथ जो मूर्ति के रूप में दर्शित है ये हमें कुछ न कुछ ऐसे संकेत प्रदान करते हैं।

कुछ आगे बढ़ें। 'मानस-जमुना'; फिर एक बार हम श्रीमन् महाप्रभुजी वल्लभाचार्य भगवान का आश्रय करे -

नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्‍भुतम्।
न जातु यमयातना भवति ते पय:पानत:।।
यमोऽपि भगिनीसुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि।
प्रियो भवति सेवनात् तव हरेर्यथा गोपिका:।।

'यमुनाष्टक' का ये छठ्ठा श्लोक है। इस मंत्र में श्रीमन् महाप्रभुजी यमुने महाराणी को सबसे पहले प्रणाम करते हैं और कहते हैं, हे यमुना! हे महाराणी! सदा-सदा हम आपको प्रणाम करते हैं। तपस्वी ऋषि कृष्णशंकरदादा कभी कहा करते थे कि किसीको प्रणाम करना, नमस्कार करने का मतलब है ये कबूलात है, एक स्वीकृति है। मैं आपको प्रणाम करता हूं, कभी अप्रामाणिक नहीं होउंगा। मैं आपको नमस्कार कर रहा हूं इसकी स्वीकृति ये है कि मैं कभी नमकहरामी नहीं करूंगा। मंत्र का आरंभ नमस्कार से हुआ है और 'तव चरित्रमत्यद्‍भुतम्।' हे यमुनाजी, आपका चरित्र अति अद्‍भुत है। पहले तो हमें ये समझना कि अद्‍भुत मानी क्या? अद्‍भुत का अर्थ है सीधा-सादा, सब है उससे जरा अनूठा है। अथवा बिलकुल शिष्ट भाषा का प्रयोग करूं

तो अद्‌भुत का अर्थ होता है विलक्षण। लक्षण तो सब में है, लेकिन इस आदमी में कुछ विशेष लक्षण है। दिखने नहीं देता, दिखाता भी नहीं, लेकिन नजरवाले पहचान लेते हैं कि ये आदमी अनूठा है। कभी-कभी तो लगता है अद्वितीय है। ऐसा कोई है ही नहीं।

अद्‌भुत उसको कहते हैं जो निरंतर गतिशील हो। डबरा, जहां पानी बंधियार हो जाये तो कभी अद्‌भुत नहीं हो सकता। ये सीमा में आबद्ध है। और उसमें मच्छर, जीवजंतु कीटाणु बहुत प्रकट हो जाते हैं। जहां भी संकीर्णता आई, बुराईयां आई। जहां गतिशीलता आई, कचरा साफ़ हुआ। जो गतिशील है वो अनूठा है। तो जो गतिशील है वो अनूठापन धारण करता है। श्री यमुनाजी निरंतर गतिशील है इसीलिए हे यमुनाजी, तू अद्‌भुत है! अद्‌भुत ही क्या, अति अद्‌भुत है! एक अर्थ। दूसरा अद्‌भुत का अर्थ, जिसमें पूर्णत: पवित्रता होती है वो अद्‌भुत होते हैं। लोग मानेंगे कि इतने में कोयले की खदान में उसके कपड़े पर दाग कैसे नहीं पड़े हैं? सबके बीच में रहना और सबसे असंग रहना ये विलक्षणता है; अनूठापन है; अद्‌भुत है। यमुना हमारे लिए बह रही है, हमको धन्य कर रही है लेकिन उसका संग तो कृष्ण का संग है; हम से असंग है। साहचर्य तो केवल कृष्ण के साथ है।

तीसरा अद्‌भुत का अर्थ पूर्ण प्राप्ति होने के बाद नीचे ऊतर आये हैं ये लोग अद्‌भुत है। बुद्ध को पूर्ण प्राप्ति हो गई फिर वो लोगों के बीच में आ गया, क्योंकि बुद्ध अद्‌भुत है, अनूठा है, बिलक्षण है। यमुनाजी की ऊंचाई, 'कलिन्दगिरि मस्तके' लेकिन ये अनोखी है। धन्य है श्री यमुना कि वहां से हम जैसे लोगों के लिए हमारे बीच में आ गई। निकट बहने लगी। लोटी के रूप में घर-घर में पहुंच गई। वो लोग अद्‌भुत है, ऊंचाई प्राप्त करने के बाद भी आखिरी व्यक्ति तक पहुंचते हैं। 'रामायण' अद्‌भुत है। अनोखा शास्त्र है। विलक्षण है, क्योंकि आखिरी व्यक्ति तक पहुंचा।

ये जो 'यमुनाष्टक' है उसका छंद पृथ्वी है। पृथ्वी छंद में लिखा गया है ये। क्यों महाप्रभुजी ने पृथ्वी छंद पसंद किया? क्यों? यमुना पृथ्वी पर आई। वर्ना वो तो गोलोकवासिनी है। पूरा का पूरा सत्त्व-तत्त्व लेकर पृथ्वी पर आई इसीलिए महाप्रभुजी ने सोचा कि उसका छंद पृथ्वी हो। दूसरा, पृथ्वी क्षमा का प्रतीक है। यमुना महाराणी हम जैसों को क्षमा करती है। तीसरा, पृथ्वी घूमती रहती है, चलायमान है, स्थिर नहीं है, वैसे यमुनाजी भी घूमती रहती है। इसीलिए पृथ्वी छंद है। पृथ्वी में बोओ वो ऊगता है। यमुना के किनारे बैठकर किया हुआ 'श्रीकृष्ण: शरणं मम' ऊगता है। पता भी न लगे चित्त को और बगियां हरीभरी हो जाती है। पृथ्वी छंद महाप्रभुजी ने इसीलिए लिखा है कि पृथ्वी का गुण गंध है। जैसे आकाश का स्वभाव शब्द है। 'बिनु महि गंध की पावउं कोई।' मेरा गोस्वामीजी वैज्ञानिक सूत्रपात करते हैं। हर खुश्बू पृथ्वी की देन है। कई महापुरुषों को अनुभव हुआ होगा कि यमुना की भी उसको गंध आई होगी; कोई महक आई होगी। कृपया जनता और सरकार पृथ्वी की तरह यमुना को घूमती रखे। यमुना बहती रहनी चाहिए। गंगा बहती रहनी चाहिए। पृथ्वी सहनशील है, पृथ्वी के समान सहन कोई नहीं करता।

यमुना सहनशील है क्योंकि माँ है और माँ सहनशीलता का प्रतीक है। पृथ्वी को खोदो, इनमें से बहुत रत्नमणि निकलते ही रहते है। यमुना महाराणी का जितना मानसिक मज्जन किया जाय, जितना चिंतन किया जाय, बिना पढ़े आपको नये-नये अर्थ के रत्न यमुनामैया कृपा करके देगी, क्योंकि पृथ्वी छंद में है। पृथ्वी है आधार जगत का। पृथ्वी धारक है, पृथ्वी पोषक है, पृथ्वी पालक है। 'यमुनाष्टक' भी पृथ्वी छंद में है इसीलिए वैष्णवों के लिए नहीं सबके लिए पोषक है, पालक है, धारक है। वहन करनेवाला स्तोत्र है इसीलिए पृथ्वी छंद में है। पृथ्वी पहाडों से, वृक्षों से, समुद्र से भरी है। पृथ्वी पर अढारभार वनस्पति है। पर्वतों की धारक है। 'यमुनाष्टक' में पृथ्वी छंद का इसीलिए उपयोग हुआ है। 'यमुनाष्टक' हम सबकी धारक है, पालक है, पोषक है। पृथ्वी का ग्रहण नहीं होता। कोई राहु पृथ्वी को ग्रसता नहीं है। इतने तेज के गोले चांद, सूरज, राहु की लपेट में आता है। पृथ्वी कभी किसी की लपेट में नहीं आती है। कोई माय का लाल उसको विकृत नहीं कर सकता। कोई उसको ग्रस नहीं सकता। कोई काला धब्बा नहीं दे सकता, क्योंकि यमुना ने कहा, तू मुझे काला धब्बा क्या लगायेगा, मैं स्वयं श्यामवर्णी हूं, मैं श्यामल हूं। इसीलिए पृथ्वी छंद में है।

तो बाप! 'यमुनाष्टक' की यमुना अति अद्‌भुत है। केवल सभ्य समाज को स्वीकारे वो सज्जन है, असभ्य को भी कुबूल करे वो संत है। अच्छा है सभ्य समाज को कुबूल करना; बुरा नहीं है। लेकिन कैसा भी कोई आया उसको कुबूल करना ये संतत्व है। निंदा होगी कि गज़ब है! हमको पता लगता है कि ये सज्जन है कि दुर्जन है और इतना बड़ा बुद्धपुरुष हो उसको दुर्जन का पता नहीं होता? होता तो है लेकिन उसको भी स्वीकारता है। यमुना ये है। उसके तट पर कोई भी गया, ये वैष्णव हो तो ही यमुना कुबूल करे ऐसा नहीं है। यमुना परमपावन है, सबका स्वीकार करती है इसीलिए अद्‌भुत है। अच्छे को कुबूल करो, सभ्य हो। जो भी आये कुबूल करो, साधु हो। यमुना साधुप्रवाह है। यमुना अत्यद्‌भुत है। अद्‌भुत है। और जो व्यक्ति के इर्द-गिर्द लाख घूमो फिर भी उसका रहस्य पाने में आप असफल ही रहो वो अद्‌भुत होते हैं। यमुना का श्याम जल ही गहराई का प्रतीक है। शामवर्ण ही गहराई का प्रतीक है। इसीलिए अति अद्‌भुत है।

'रामचरित मानस' से भी अद्‌भुत की व्याख्या सुनो। 'मानस' किसको विलक्षण कहता है? क्या परिभाषा है अनूठे व्यक्ति की? एक, जो कभी खंडित न हो वो व्यक्ति अद्‌भुत है। जिसकी वृत्ति को आप तोड़ न पाओ, अखंडवृत्ति। आप गाली दो तो भी उसका भजन चालू रहे। जिसका भजन अखंड हो समझ लेना ये बुद्धपुरुष अद्‌भुत है। ये तुलसी की परिभाषा है। ये 'मानस-जमुना' की परिभाषा है। कौन अद्‌भुत? जिसका आनंद अखंड आनंद हो। जिसकी वृत्ति अखंड हो। जिसका भजन अखंड हो, तैलधारावत् हो। जिसकी भीतरी गति निरंतर अखंड हो। व्याख्या में अच्छा लगता है तो जिनको ये स्थिति प्राप्त हुई होगी वो अद्‌भुत नहीं है क्या? अति अद्‌भुत लोग है।

अब मुझे अद्‌भुत की दूसरी व्याख्या कहनी है लेकिन क्रम-ब्रम नहीं होगा यहां! ये तो सत्यनारायण का शीरा है। इसमें शींगदाना आये भी, न भी आये! काली द्राक्ष आये भी, न भी आये! हो सकता है गन्ने का टुकडा भी आ जाये! हो सकता है। कोई क्रम की अपेक्षा मत रखना। मेरी समझ में गुरुकृपा से पक्का ऊतर रहा है कि परम अव्यवस्था का नाम परमात्मा है। सिलसिला नहीं होता वहां। जावेद अख़्तर का बहुत प्यारा शे'र है। आप एन्जोय कीजिए। मार्गदर्शक शे'र है -

बरसों की रस्मे राह थी एक रोज उसने तोड़ दी।
हुशियार हम भी कम नहीं, उम्मीद हमने छोड़ दी।

उसने तोड़ने का सिलसिला चालू रखा, हमने गांठ लगाने का सिलसिला चालू रखा। शिस्तबद्धता सिद्धांत हो सकती है, अस्तित्व की व्यवस्था नहीं हो सकती। शास्त्र जीवन देता है आदमी को। एक गतानुगति चल रही है। मैं आपको ये कहूं कि मेरी कथा में आओ तो यूनिफोर्म पहनकर आओ? श्रोताओं को यूनिफोर्म देना श्रोताओं को यंत्रता देना है, जीवन छिन लेना है। ये प्रयोग है। ये धर्मशाला नहीं है। ये जीवन है। यंत्रता नहीं होनी चाहिए। कुछ हुक्म आदमी को यंत्रमानव बना रहा है। चेतना को आदर दो। इमरोज़ के कुछ बचन मुझे बहुत प्रिय है। इमरोज़ कहते हैं कि -

प्यार में न कोई वादा होता है ओर न कोई शिकायत।
प्यार एक-दूसरे की महकती मौजूदगी होता है।
प्यार रिश्ता नहीं होता बल्कि सब रिश्तों से आज़ाद होता है,
प्यार समझ नहीं आता लेकिन प्यार समझ लेता है।

हम प्रेम को रिश्ता मानते हैं! मुक्त संबंधो का ये प्रदेश है। आखिरी पंक्ति बहुत नाजूक है। भक्ति समझ नहीं आती, लेकिन भक्ति समझ लेती है। प्रेम देवता समझ लेता है। तो कोई लेफ्ट-राईट, लेफ्ट-राईट की तरह कथा नहीं चलेगी। यहां कोई सिलसिला नहीं है। मेरा प्रवाह तो इधर भी जाए, इधर भी जाए, इधर भी जाए। ये प्रयोग है स्वाभाविक। सब को छूट दी जाती है। जहां भी बैठो; बैठो, बस। और कथा भीड़ में भी आपको अकेला बना दे तब मुझे लगता है तलगाजरडा सफल हुआ है। एक बहुत बड़ा प्रयोग चल रहा है ये। यस, ये प्रयोग चल रहा है। और प्रयोग करने से परिणाम आता है। बिना प्रयोग परिणाम कैसे आता है? मुक्तता बहुत मर्यादा देती है और मुक्तता उन्मुक्त बनाने में देर नहीं करती।

तो पहले मैंने अद्‌भुत, की व्याख्या 'मानस-जमुना' से ली कि अद्‌भुत, अनोखा, विलक्षण व्यक्ति वो है जो खंडित नहीं हुआ है; जिसका पतन नहीं हुआ है। रोम-रोम में कोटि ब्रह्मांड लगे हैं! जब राम प्रकट हुए तब -

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।

हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्‌भुत रूप बिचारी।।

कौन अनूठा? कौन विलक्षण? कौन न्यारा? कौन अद्‌भुत? जो मुनियों के मन को भी हर ले। संसारियों के मन हर लेना सरल है। मैं कोई एक फिलम का गीत गाउं और कोई विषयी लोग झुम जाये ये कोई बड़ी सफलता नहीं है। ये तो ज्यादा से ज्यादा व्यासपीठ के करीब लाने का करिश्मा है। विरक्त, असंगी लोगों का मन हर जाये वो अद्‌भुत है, वो न्यारा है। यमुनाजी ने भी मुनियों के मन हर लिए हैं। वर्ना पराशर क्यों आते यहां? नारद क्यों बीना बजाते रहते हैं यमुना के तट पर? कभी भी भूल मत करना कि नारद का विहार केवल गंगा के तट पर था। वो यमुनातट विहारी भी है। और 'गति सर्वत्र तुम्हारीं।' नारद मुनि है। ये यमुना के प्रवाह पर सनतकुमार भी आया-जाया करते थे। सनकादिक मुनि है। इनके मन भी आकर्षित हो जाते थे। मेरे कहने का मतलब वो अद्‌भुत है। भगवान राम प्रकट हुए हैं तो मुनियों का मन आकर्षित हुआ है। और राम स्वयं ईश्वर है। इसीलिए अत्रि ऋषि कहते हैं -

तमेकमद्‌भूतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं।

जगद्‌गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं।

जो समर्थ हो, प्रभु हो वो अद्‌भुत होता है। प्रभु का अर्थ है समर्थ। जो करने योग्य भी कर सकता है; न करने योग्य भी कर सकता है। कृष्ण प्रभु है। इसीलिए छ या सात श्लोक में उत्तरा के बालक को जीवित करने में उसने जो सत्य की उद्‌घोषणा की है। कृष्ण बोले हैं कि मैं कभी झूठ न बोला हूं तो ये बालक जीवित हो जाये। और झूठ बोलने में कोई कमी नहीं बर्ती है इस आदमी ने! ऐसा आदमी अद्‌भुत होता है! कृष्ण अद्‌भुत है। इसीलिए कृष्ण को जगद्‌गुरु कहा है। तुलसी तुरंत दूसरी पंक्ति में कहते हैं -

जगद्‌गुरुं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलं।

यमुनाजी को 'तुरियप्रिया' कहा है महाप्रभुजी ने। किसी के उपर प्रेम होता है तो रजोगुण देखकर प्रेम होता है; सत्त्वगुण देखकर प्रेम होता है। लेकिन गुणातीत होते उसको तुरीया कहते हैं। यमुनाजी तुरीयप्रिया है कृष्ण की। 'गुणरहितं कामनारहितं', उसी संबंध यमुना और कृष्ण का है। प्रभु अद्‌भुत है। तो अद्‌भुत की ये व्याख्या है। जो सबकुछ कर सकता है और फिर भी अकर्ता है। दाग दहेलवी का एक शे'र सुनिए-

न रुका 'दाग' बज़्मे गैर में भी आंसू,

जिसको आना होता है वो तो आ ही जाते हैं।

अब दुश्मनों के साथ आंसू आये ये तो मुश्किल है! अपने कोई अच्छे लोग मिल जाय तो ऐसा हो सकता है। लेकिन जिसको आना होता है वो तो आते ही रहते हैं साहब! वो कहां क्लास लेते हैं? वो कहां क्रम से आते हैं? आंसू को तो आना है; वो तो आ ही जाएगा। उसका कोई क्रम नहीं, अनूठे हैं।

मेरे भाई-बहन, जो प्रभु है वो अद्‌भुत है। एक ओर व्याख्या सुनीए अद्‌भुत की। जो कभी देखा न हो, जो कभी सुना न हो, जो मन ने कभी कल्पना न की हो, जो बुद्धि से बाहर हो और जिसका वर्णन न किया जाय उसको तुलसीदासजी 'उत्तरकांड' में अद्‌भुत संज्ञा देते हैं। ऐसा अद्‌भुत दर्शन भुशुंडि ने किया है जिसका वर्णन हम कर नहीं सकते। अनूठा है। और यमुनाजी जलप्रवाह है। 'मानस' को भी तुलसी ने यमुना कह दिया। और तुलसीदासजी ने 'मानस' को जल के साथ बहुत जोड़ा है। आपको गर्मी लग रही हो तो उसके लिए उपाय होता है न कि निम्बू पानी पीओ, कोई ज्यूस पीओ, पानी ज्यादा पीओ, ऐसा होता है। लेकिन कुछ पीना न पड़े और गर्मी चली जाय इस घटना को अद्‌भुत कहते हैं। खाना न पड़े और भूख चली जाय उसको अद्‌भुत घटना कहते हैं। मेरे जीवन में हर कथा में ऐसी घटना घटती है। मैं पहले दिन जितना खाता हूं इतना दूसरे दिन नहीं खा पाता हूं! मेरा खाना कम होता जाता है, क्योंकि 'मानस' अद्‌भुत है! हरिनाम आहार है। जिसको में गा रहा हूं वो शास्त्र अद्‌भुत है। तुलसीदासजी ऐसी एक अद्‌भुत घटना की चर्चा 'बालकांड' में करते हैं।

नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यदभूतम्।

अब 'मानस-जमुना' से उसको मिलाईए।

अद्‌भुत सलिल सुनत गुनकारी।

आस पिआस मनोमल हारी।।

तो यमुनाजी का पानी अद्‌भुत है। मेरी 'मानस-जमुना'जी का जल भी अद्‌भुत है। कौन-सा अनूठापन? कौन-सा न्यारापन? 'सुनत गुनकारी', सुनो और गुन करे। पानी तो पीओ और तृषा मिटे। 'रामायण' का जल सुनने से जो पीया जाता है तो कौन-सी प्यास मिट जाती है?

आस पिआस मनोमल हारी।।

जगत की सब आशा तृप्त हो जाती है। आशामात्र की तृषा खत्म हो जाती है। और मन के मल को हर लेती है। तो ये सब अद्‌भुत तत्त्व है।

नमोऽस्तु यमुना सदा तवचरित्रमत्यदभूतम्।

नजातु यमयातना भवति ते पय:पानत:।।

यमुनाजी का चरित्र अद्‌भुत है। ये शरीर यमयातना है। यमयातना से ये पीड़ित होगा ही होगा। लेकिन यमयातना के बाद भी शरीर पीड़ित न हो ऐसा कोई तत्त्व हो तो उसका चरित्र अद्‌भुत है। यमुना के अद्‌भुत चरित्र को सुनने से, उसका पान करने से यमयातना जन्म नहीं ले पाती। कभी हमें यमयातना पीड़ा नहीं दे पाती जो यमुनाजी के जल का पयपान करते हैं, 'पय:पानत:।' अब आचार्यो ने बहुत चर्चा की है कि यमुना के पानी को पय कहना ठीक नहीं है। अब ये आचार्यो की कुस्ती मैं बता रहा हूं आपको कि पानी को दूध नहीं कहना चाहिए। क्योंकि भगवन् श्रीमन् महाप्रभुजी का ये वचन है 'पय:पानत:'; और वल्लभाचार्य प्रभु का एक आग्रह भी है कि भक्ति में कोरी कल्पना बाधक बनती है। इसीलिए काव्यरचना में भी कोरी कल्पनायें न की जाय। पानी को पानी रहने दो, दूध नहीं कहना चाहिए, क्योंकि ये कोरी कल्पना है। ये तुम्हारी धारा को बाधक कर सकती है। तो भगवान वल्लभाचार्य भगवान एक ओर ये सिद्धांत रखते हैं और एक ओर पानी को दूध कहते हैं। लेकिन ये अपवाद है। हम सबके लिए नहीं है। भगवान वल्लभप्रभु ने यमुनाजी का दर्शन जिस रूप में किया है। और अबूझ बालक की दृष्टि माँ के पास पानी नहीं मांगती, दूध ही मांगती है। इसीलिए यमुनाजी के पवित्र जल को भी महाप्रभुजी 'पय:पानत:' कह देते हैं। ये पय का पान है। ये माँ है। माँ के पास दूध होता है। माँ दूध देती है। इसीलिए ये कोरी कल्पना नहीं है। तो यमुनाजी को माँ समझकर ये पानी जो दूध है उसका जो पान करते हैं उसको जीवन में यमयातना जन्म नहीं लेती है। संभव नहीं कि यमयातना यमुना के उपासकों को पीड़ित कर सके। ये असंभव है। आगे बोलते हैं महाप्रभुजी -

यमोपि भगिनिसुतान् कथमुहन्ति दुष्टानपि।

यमुनाजी छोटी बहन है। यमराज बड़े भाई है। और यमुनाजी के संतान ये उनके भांजे हैं। तो दुष्ट भी हो तो भी मामा उसको मारेंगे नहीं। इसीलिए दुष्ट से दुष्ट भी यमुना की कृपा से मुक्त हो जाते हैं। उसको दंड नहीं दिया जाता है।

प्रियो भवति सेवनात् तव हरेर्यथा गोपिका:।

महाप्रभुजी कहते हैं, हे यमुनाजी! ये व्रजांगनाओं ने आपका सेवन किया, नित्य आपमें स्नान करके वो कात्यायनी व्रत करती थी। आपकी सेवा व्रजगोपिकाओं ने बहुत की है इसीलिए हरि की प्रिया बन गई। प्रत्येक गोपीजन कृष्णप्रिय बन गई। तो महाप्रभुजी कहते हैं, हम अपनी लालच को नहीं रोक पाते हैं। हम आपका सेवन करे तो हम भी हरि को प्रिय हो जाएंगे। 'हरेर्यथा गोपिका।' जैसे गोपिकायें यमुनाजी का पान करने से कृष्णप्रिया बन गई वैसे हे यमुनामाँ, हम भी तेरा सेवन करेंगे तो हम भी कृष्णप्रिय हो जाएंगे, कृष्ण के दुलारे हो जाएंगे। 'प्रियो भवति सेवनात्।' सेवा करने से प्रिय हुआ जाता है। बड़ा

'यमुनाष्टक' की यमुना अति अद्‌भुत है। केवल सभ्य समाज को स्वीकारे वो सज्जन है, असभ्य को भी कुबूल करे वो संत है। उसके तट पर कोई भी गया, ये वैष्णव हो तो ही यमुना कुबूल करे ऐसा नहीं है। यमुना परमपावन है, सबका स्वीकार करती है इसीलिए अद्‌भुत है। अच्छे को कुबूल करो, सभ्य हो। जो भी आये कुबूल करो, साधु हो। यमुना साधुप्रवाह है। यमुना अत्यद्‌भुत है। अद्‌भुत है। और जो व्यक्ति के इर्द-गिर्द लाख घूमो फिर भी उसका रहस्य पाने में आप असफल ही रहो वो अद्‌भुत होते हैं। यमुना का श्याम जल ही गहराई का प्रतीक है। शामवर्ण ही गहराई का प्रतीक है। इसीलिए अति अद्‌भुत है।

सूत्र है। अपनी व्यासपीठ को अनुकूल पड़े ऐसा सूत्र है। सेवा करने से प्रिय हुआ जा सकता है। पूजा करने से प्रिय नहीं हुआ जाता। पूजा तो विधि है। पूजा से सेवा बहुत महत्त्व की वस्तु है। लेकिन हम पूजा करने के आदती है! पूजा करनी चाहिए। लेकिन पूजा सस्ती है। सेवा बहुत कठिन है। और सेवा की व्याख्या करते हुए तुलसीजी कहते हैं -

अग्या सम न सुसाहिब सेवा।
सो प्रसादु जन पावै देवा।।

सबसे श्रेष्ठ सेवा तुलसी ने लिख दी कि हमारी जिसमें श्रद्धा है, हम पूर्णत: जिसमें डूबे हैं, ये आज्ञा को कूबुल करना इससे बढ़कर कोई सेवा नहीं है। हम आज्ञा नहीं मानते हैं, पूजा बहुत करते हैं। 'रामचरित मानस' ने एक व्याख्या दी है। स्वामी जो होता है वो सदैव सच्चा ही होता है। सच्चा होता है उसका नाम ही स्वामी होता है। कुछ न कुछ दोष होते हैं उसीका नाम ही दास है। तो यमुनाजी की सेवा से गोपियोंको कृष्ण प्रिय हुए। हम भी यमुनाजी की सेवा करेंगे। और यमुनाजी की सेवा इसका मतलब यमुना को प्रदूषित न करे, उसमें कचरा न डाले; तीर्थ में रहनेवाले भी और आंगतुक भी। ये सेवा है जिससे हम हरिप्रिय हो सकते हैं, जैसे गोपीजन हुए थे।

तो आईए, कथा का थोड़ा क्रम उठाउं। भगवान राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के संग जनकराज के 'सुंदरसदन' में ठहरे हैं। सायंकाल को राम-लक्ष्मण दोनों भाई गुरु की आज्ञा लेकर मिथिला का दर्शन करने के लिए जाते हैं। पूरी नगरी राम को देखने में डूब चुकी है। महिलाओं ने, बुझूर्गो ने, समवयस्क बालकों ने अपना-अपना भाव राम के रूप में, राम की मनोहरता में समर्पित किया। ये आगे का अध्याय था समर्पण का। पूरा नगरदर्शन करके राम लौट आते हैं। फिर गुरुविश्राम करने को गये तो राम-लक्ष्मण उसकी चरणसेवा करते हैं। भगवान ने अपना ब्रह्मत्व का समर्पण कर दिया बुद्धपुरुष के शरण में। सुबह होती है। पूजा के पुष्प के लिए राम-लक्ष्मण जनक की पुष्पवाटिका में जाते हैं। उसी समय सखियों के संग जानकीजी माँ के कहने पर गौरीपूजा के लिए वाटिका में आई है। राम और जानकी का प्रथम पावन मिलन जिसमें भगवान राम जानकी के प्रति समर्पित हो जाते हैं। जानकी राम के प्रति समर्पित हो जाती है। जानकी ने सांवरे वर के लिए माँ दुर्गा की स्तुति की। सीताजी के विनय-प्रेम को देखकर मूर्ति मुस्कुराई, आशीर्वाद दिया, 'तुम्हारे मन में जो सांवरा बस गया वो तुम्हें प्राप्त होगा।'

दूसरा दिन पूरा हुआ। विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण मुनिगणों के संग रंगभूमि में प्रवेश करते हैं। एक के बाद एक अभिमानी राजा धनुष तोड़ने का असफल प्रयास करते हैं। आखिर में विश्वामित्र महाराज रामजी को आदेश देते हैं कि राघव उठो; धनुष को तोड़ दो। और भगवान राम ने अपने गुरु को याद करके प्रणाम करते हुए धनुष को कैसे पकड़ा, कैसे उठाया, कैसे चढ़ाया कोई नहीं देख पाया! सब ने आवाज़ सुनी और टुकड़े धरती पर गिरे हुए देखे बाकी कुछ नहीं समझ पाये! जयजयकार हो रहा है। सखियां जानकीजी को लेकर आती हैं। धनुष है अहंकार। और कोई सरल चित व्यक्ति अहंकार को तोड़ दे और भक्ति को प्राप्त कर लेता है तब तत्कालीन समाज सहन नहीं कर पाता है इसीलिए वो बलवा बोलता है। लेकिन व्यक्ति साधुचित्त हो, अहंकारमुक्त हो, भक्ति को प्राप्त कर चुका हो तो अगल-बगल का समाज यदि विग्रह करेंगे तो भी साधु को कुछ नहीं करना पड़ेगा। कोई ऐसा आदमी आयेगा कि ये विद्रोह अपनेआप शिस्त में आ जाएगा। परशुराम की एन्ट्री से अपनेआप शिस्त आ गई। जो बलवा बोलने के लिए तैयार थे, चुप हो गये! सब दंडवत् करने लगे। महाराज जनक ने आकर प्रणाम किया। विश्वामित्र और परशुराम मिले। राम को देखकर परशुरामजी स्तंभित हो गये कि ये कौन है! अंशावतार को पूर्णावतार ने अपनी ओर खिंचा। आखिर में भगवान राम ने ऐसे मर्मवाक्य कहे और जब प्रभाव जाना कि ये तो ब्रह्मत्व का अवतरण हो चुका है। मैं भी समर्पण कर दूं। परशुराम बाबा ने भगवान राघवेन्द्र की स्तुति की। जयजयकार करके वो तपस्या करने के लिए निकल गये। दूतों को अवध भेज दिये गये। महाराज दशरथजी पूरी अवधपुरी को लेकर जनकपुर पहुंचते हैं। और 'मंगल मूल लगन दिन आवा।' विवाहविधि संपन्न हुई। मांडवीजी भरतजी को समर्पित। ऊर्मिला लक्ष्मणजी को समर्पित और श्रुतकीर्ति शत्रुघ्न महाराज को समर्पित हुइ है। बिवाह संपन्न होता है। कुछ दिन बारात रुकती है। आखिर में जनक बिदा देते हैं। और यहां बारात अयोध्या पहुंचती है।

'मानस' की कथारूपी जमुना का प्रवाह सतत चलता रहता है

'मानस-जमुना', जिसको केन्द्र में रखते हुए हम संवाद कर रहे हैं। आज बहुत-सी जिज्ञासाएं तो थी लेकिन समय का अभाव है। मैं उसमें न जाउं। केवल एक प्रश्न रखा है कि बापू, आपने कहा कि जमुनाजी कृष्ण भगवान के आंसू से जन्मी है तो कृष्ण भगवान को लेके नंदजी जा रहे थे तब जमुनाजी ने रास्ता दिया, तो जमुनाजी कृष्ण भगवान से पहले कैसे आई? भगवान के आंसू से यमुना प्रकट हुई वो परम नारायण के आंसू से प्रकट हुई है। भगवान कृष्ण ये तो अवतार में पधारे फिर बहुत समय के बाद। इसीलिए यमुनाजी का प्राकट्य जिसको हम परमतत्त्व, परमनारायण कहते हैं उसके दृगबिंदु से हुआ है। कृष्ण परम ही है, लेकिन वो अवतार लेकर आये हैं इसीलिए हमें बाद में दिखते हैं। तो इतनी ही बात आज। हमारे बरोडावाले हरीशभाई ने कितनी बार यमुनापरक शब्द 'मानस' में आया है उसका एक लिस्ट मुझे भेजा है। सबका स्मरण तो हम नहीं कर पाये हैं, लेकिन उसका स्मरण करा दूं कि 'मानस' में अठारह बार यमुनाजी का स्मरण किया गया है बिलग-बिगल शब्दों में। फिर तुलसीसाहित्य में 'विनयपत्रिका' में भी है, 'रामज्ञा प्रश्न' में भी है, 'कृष्ण गीतावलि' में भी है और कई जगह मिलेगा। 'विनयपत्रिका' में भी श्यामवर्ण कहकर भगवान के पैर के तले में तुलसी ने ये तीनों नदियों का दर्शन किया। और भगवान के चरण को प्रयाग की तुलना देकर वहां भी पुनित स्मरण है।

आईए, शंकराचार्य भगवान का आश्रय करके आज हम नव दिन की रामकथा को विराम की ओर लिये चले। भगवान शंकराचार्य ने जो दो 'यमुनाष्टक' लिखे उनमें से थोड़ा संस्पर्श करते आगे बढ़ें।

अयि मधुरे मधुमोदविलासिनि शैलविहारिणि वेगभरे।
परिजनपालिनि दुष्टनिषूदिनि वाञ्छितकामविलासधरे।
व्रजपुरवासिजनार्जितपातकहारिणि विश्वजनोद्धरिके।
जय यमुने जय भीति निवारिणि संकटनाशिनि पावय माम्।

इस मंत्र में जगद्‌गुरु आदि शंकर कहते हैं कि 'अयि मधुरे', माँ यमुना को बहुत सुंदर शब्दों में संबोधन करते हैं कि हे मधुर, तू बहुत मधुर है। वास्तव में मधुर है। जल के कई गुण है लेकिन मुख्य तीन स्वभाव है, जो 'मानस' में भी लिखा है कि जल मधुर होना चाहिए, स्वच्छ होना चाहिए और शीतल होना चाहिए। इनमें से 'मधुर' शब्द को पकड़कर जगद्‌गुरु शंकर कहते हैं, यमुनाजी, आप मधुर है। बहुत रसप्रद आनंद का विलास करानेवाली है। साधक को तेरे से बहुत आनंदमय रस की उपलब्धि होती है। ऐसी हे माँ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं, जयजयकार करता हूं। तुम मुझे पवित्र करो।

'परिजनपालिनि।' यमुनाजी, आप परिजन को पालन करनेवाली है। तेरे तट पर जो-जो बसते हैं पशु, पक्षी, दुर्वांकुर, पत्थर, कंकड, वृक्ष, लता और जो-जो तुम्हारे तट पर गांव-नगर बसे हो और वहां भी जो रहे उसको तू परिजन समझती है; तू उसको परिवार समझकर उसका पालन करती है। 'दुष्टनिषूदिनि'; हे यमुनाजी, आप दुष्टों का नाश करती है। हमारे जीवन से अनावश्यक वस्तु को तू हटा देती है। 'वांछितकामविलासधरे।' हे यमुनाजी, तुम्हारे पास जो कोई अपने मनमें वांछित कामना करे उसको तू बहुत अधिक मात्रा में पूर्ण करती है। ये सब शंकराचार्य भगवान के अनुभव है। ये अनुभव हमारे भी हो सकते हैं। लेकिन शंकर की ऊंचाई हो तो; शंकराचार्य की अंत:करण विशुद्धि हो तो।

शंकराचार्य परम शिव है। ये साक्षात् शंकर ही शंकराचार्य बनकर आये थे। इसीलिए स्तोत्र में जो भी कहते हैं वो सच होता है। मेरे भाई-बहन, जिसमें बुद्धत्व है, जो विश्वगुरु है यानी जगद्‌गुरु है ऐसे महापुरुष में ऐसे लक्षण होते हैं। कागभुशुंडि को 'उत्तरकांड' में गरुडजी कुछ प्रश्न पूछते हैं। सात प्रश्न तो पूछे ही पूछे हैं आखिर में लेकिन उसके पहले भी जब भुशुंडि के मुख से रामकथा सुन ली, परमानंद हुआ गरुड को और फिर उसने सब अपना जीवन भी कह दिया और बहुत आनंद में डूबे हुए गरुड कुछ जिज्ञासा करते हैं। उसमें सद्‌गुरु के सामने गरुड के कुछ प्रश्न है उसी में हमें बुद्धपुरुषों की, शंकराचार्य जैसे अवतारों की खुश्बू प्राप्त होती है। गरुड कागभुशुंडि से पूछते हैं, आपको कौए का शरीर क्यों मिला, मुझे ये समझाईए। तो भुशुंडि में गरुड ने जो महसूस किया है ऐसे दस लक्षणों का लिस्ट गोस्वामीजी ने प्रदान किया है। कैसे हैं कागभुशुंडि? कैसे हैं गरुड के ये बुद्धपुरुष? हमें थोड़ी उसकी आवाज़ सुनाई दे, तो उसके दस लक्षण किसी बुद्धपुरुष में हम देखना चाहे तो परख कर सकते हैं -

तुम्ह सर्बग्य तग्य तम पारा।
सुमति सुसील सरल आचारा।।
ग्यान बिरति बिग्यान निवासा।
रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा।।

ध्यान देना बाप! ये महाप्रभुजी में भी खरे ऊतरते हैं जिसने 'यमुनाष्टक' गाया। गिने-चुने लोगों में ये लक्षण दिखते हैं। लेकिन भुशुंडि तो भुशुंडि है नि:शंक। तो गरुड कहते हैं, मैंने आपके पास बैठकर रामकथा सुनी और सुनते-सुनते मैंने आपको समझ लिया, पा लिया। आपसे मैंने पहला लक्षण देखा वो सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ का मतलब आप जानते हैं कि जो सबकुछ जाने। कोई बात जिससे अनजानी न हो। लेकिन सर्वज्ञ का अर्थ इतना ही नहीं है। सच्चा सर्वज्ञ वो है कि सबकुछ जानते हुए भी, खुद को पता नहीं है कि मैं सबकुछ जानता हूं। सामनेवाले को ही पता लगता है। क्योंकि सबकुछ जाननेवाले को खुद को ये पता लग जाय तो स्खलन संभव है। भुशुंडि ने कभी नहीं कहा कि मैं सर्वज्ञ हूं। जाना गरुड ने; जाना निकट बैठनेवाले ने। इसीलिए हमारे यहां पहुंचे हुए महापुरुष के पास बैठने की बड़ी महिमा है। गरुड इतना समय भुशुंडि के पास बैठा है इसीलिए जान लिया है उसने कि आप सर्वज्ञ है।

ये बुद्धपुरुष के सब लक्षण है। दस लक्षण 'मानस' में है। 'तग्य।' तग्य का अर्थ होता है समस्त तत्त्वों का जानकार। मैंने तो देहात में देखा है कि जो कुछ पढ़ा ही नहीं है, उसको ये पंचतत्त्वों में जल तत्त्व का पता लगता था कि बादल ऐसे उमडे हैं, हवा इधर से आई है, ये पक्षी बोल रहा है, दो दिन में बारिश होगी। पृथ्वी तत्त्व को, जलतत्त्व को, आकाशतत्त्व को, अग्नितत्त्व को, वायुतत्त्व को अथवा तो विज्ञान और तत्त्व खोजे उसको। मैं बहुत खुश हूं ये बुद्धपुरुष के दस लक्षण में एक लक्षण है, 'बिग्यान निवासा।' कागभुशुंडि 'विज्ञान भवन' है। दिल्ही में तो है लेकिन कागभुशुंडि स्वयं विज्ञानभवन है।

तुलसी कितने एडवान्स है! मैं युवान भाई-बहनों को कहना चाहूंगा कि तुलसी को इस दृष्टि से भी पढ़ो। ये आदमी इतनी सालों पहले कह गया कि भुशुंडि 'विज्ञान निवास' है। ये आदमी ने राम के मुख से इतनी साल पहले बुलवाया कि ज्ञानी से मुझे विज्ञानी ज्यादा प्रिय है। लेकिन युवान भाई-बहन, एक वस्तु समझना कि धर्म और विज्ञान में अंतर है। इसका मतलब ये नहीं कि कभी मिले ही ना। विज्ञान व्यक्तिगत होता है, लाभ सबको मिलता है। विज्ञान की सबसे पहली खोज जो आदमी करेगा वो व्यक्तिगत होगा, फायदा सबको होता है। एक आदमी ने बिजली की खोज कर ली, ये व्यक्तिगत खोज है। लाभ सबको मिल गया। लेकिन धर्म में सबको व्यक्तिगत खोज करनी पड़ती है। सबको अपना-अपना सत्य खोजना पड़ेगा। सबको अपने-अपने प्रेम की खोज करनी पड़ेगी। आप कभी कह सकते हैं सिरी-फरहाद, हीर-रांजा उसने बहुत प्रेम कर लिया। बस बात खतम! नहीं। इससे काम नहीं चलता। नरसिंह मेहता ने भक्ति की, मीरां ने की, एकनाथ ने की। खुद को करनी पड़े भक्ति।

बुद्धपुरुष का तीसरा लक्षण 'तम पारा।' तम का अर्थ है अंधेरा। अंधेरा का अर्थ है अज्ञान। अज्ञान का अर्थ है मूढ़ता अथवा तो एक ही शब्द में कह दे 'माया।' तुम माया से पार हो; हे दाता, तुम मायिक नहीं हो। बुद्धपुरुष वो है जो माया से परे हैं। माया की निंदा नहीं करते हैं। भेद बताते हैं कि ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है। ये भेद बता दिया। जगत की आलोचना नहीं की। जगत को जला दो ऐसा शंकराचार्य नहीं कहते हैं। ये सच्चा है, ये मिथ्या है। बस, इतना ही कह दिया। जगत बिनउपयोगी है ऐसा नहीं कहा। तो आप माया से परे हैं। बुद्धपुरुष का ये तीसरा लक्षण है।

तुम्ह सर्बग्य तग्य तम पारा।
सुमति सुसील सरल आचारा।।

आपके समान प्रज्ञा मैंने कहीं देखी नहीं। तुम्हारी सुमति! तुम्हारी सद्‌बुद्धि! दाता, वारी जाउं! और गोस्वामीजी तो कहते हैं, सुमति से ही सब संपत्ति प्राप्त होती है। 'जहाँ सुमति तहाँ संपति नाना।' आप शीलवान है। आपके सभी शील अति सुंदर है। और मुझे बहुत प्यारा सूत्र वो देते हैं, 'सरल आचारा'; इतनी-इतनी उपलब्धि आपसे होते हुए आपका आचार, आपका व्यवहार कितना सरल है कि मैं आया तो आप खड़े हो गये थे! मेरा आदर करने लगे थे आप! आपका सरल आचार देखकर मैं स्तंभित हो गया! आपका आचार, आपकी रहनसहन, आपका वर्तन अत्यंत सरल है।

ग्यान बिरति बिग्यान निवासा।

आपका ज्ञान? क्या कहे? जो विशेषणमुक्त आपका ज्ञान है, ये आपकी बुद्धता सिद्ध करता है। आप ज्ञानी है। आगे कहते हैं, 'बिरति।' आपके जैसा बैराग! बहुत बैरागी है आप। परम बैरागी है। और लोग क्या कहते हैं कि जो वैरागी होते हैं उसको किसी में रस नहीं होता है। ये गलत सूत्र है।

ग्यान बिरति बिग्यान निवासा।

आप विज्ञान के निवास है। दुनियाभर का विज्ञान आपमें है। वहीं से सब निकाल रहे हैं। लेकिन ये नवों लक्षण कोई काम के नहीं है बुद्धत्व के यदि जो आखिरी दसवां न हो तो।

रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा।

तुम राम के आश्रित हो। तुम राम के प्रेमी हो, तुम राम के दास हो। न वैराग्य प्रेम के बिना सोहेगा, न ज्ञान सोहेगा; आप रघुनायक के दास है। और दसों चीज़ मैं आपमें देखता हूं इसीलिए पूछने का साहस करता हूं कि आपने ये कौए का शरीर क्यों प्राप्त किया? 'रामचरित मानस' आपको कहां से मिला? प्रभु, महाप्रलय में भी आपका नाश नहीं होता है ये क्यों? कैसे? अति कराल काल आपको व्याप्त नहीं होता है ये योगबल है कि ज्ञानप्रभाव है? और सबसे बड़ी बात तो ये है भगवन् कि आपके आश्रम में आते ही मेरा शोक, भ्रम, मोह सब नष्ट क्यों हो गया? दाता, मुझे बताओ!

तो ये बुद्धपुरुष के जो दस लक्षण है वो शंकर के भी है; वल्लभ के भी है। तो यहां जो शंकराचार्य कहते हैं कि हे यमुने! हे मधुरे! 'मधुमोदविलासिनि शैलविहारिणि वेगभरे।' आप पर्वतों के बीच से विहार करती हुई वेगवान होकर बहुत गति से दौड़नेवाली है।

परिजनपालिनि दुष्टनिषूदिनि वाञ्छितकामविलासधरे।

मनइच्छित कामना को पूर्ण करनेवाली हे यमुना, आप है। ये शंकर के सब अनुभव रहे। तभी तो ऐसा बोल सके।

व्रजपुरवासिजनार्जितपातकहारिणि विश्वजनोद्धरिके।

ब्रजमंडल में रहनेवाले जो जन थे उसकी आरती को, उनके संताप को हे यमुने महाराणी, आप हरनेवाली है। पूरे विश्व का उद्धार करनेवाली तू है। और हे यमुना, हे संकटनिवारिणी, भीति का निवारण करनेवाली है। दो ही बात समझ ले। जहां भीति होती है वहां प्रीति नहीं होती और जहां प्रीति होती है वहां भीति नहीं होती। तो एक बहुत ऊंचाई की बात है, एक हमारे समान लोगों की मनोदशा की बात है कि भीति निवारिणी है यमुना। आपकी जय हो और आप मुझे पवित्र करो। हम भी कहे, हे यमुनाजी, हम नव दिन से तेरा गुणगान गा रहे हैं। हमारे संटक तू निहार, लेकिन तुझे संकट निवारण का कष्ट हम नहीं देंगे। तेरे चरण में हमारी प्रीति बढ़े तो अपनी भीति भूली जाएगी; संकट नष्ट हो जायेंगे। इसीलिए यमुनाजी को हम इतना ही कहे, 'पावय माम्', आप हमें पवित्र रखना; पवित्र करते रहना। हम जीव है। हम बार-बार अपवित्र होते जाते हैं। हमें पावन करो।

तो जैसे मैंने पहले दिन या दूसरे दिन कहा कि यमुनाजी के तीन रूप है-आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। आधिभौतिक रूप, जो बहती है कलिन्द से निकलकर के तीरथराज प्रयाग में गंगाजी में मिल जाती है ये स्थूल रूप उसका है। और भौतिक रूप से हम भौतिकता प्राप्त करते हैं; सिंचाई करते हैं। हम बिजली उत्पन्न करते हैं; फसल पका लेते हैं। आधिदैविक रूप है यमुनाजी का महाराणी यमुना। कमल की माला लिए हुए अनखीली कलियों को हाथ में लिए ये उसका आधिदैविक रूप है; कृष्णप्रिया है ये। और आध्यात्मिक रूप जो है वो जगद्‌गुरु शंकर आदि कई महापुरुषों ने जो लिखा है। उसमें जो तात्त्विक और आध्यात्मिक रूप है कि भगवान के चरणों में भक्तिदात्री है, ज्ञानवर्धिनी है, मुक्तिदात्री है, भीतिनिवारिणी है, संकटमोचन है। ये सब उनके आध्यात्मिक रूप है।

तो जैसे यमुनाजी के ये तीन रूप है वैसे 'मानस-जमुना' के भी तीन रूप है। ये ग्रंथ के रूप में है ये उसका केवल भौतिक रूप है। और ये भौतिक रूप भी हमारी भौतिकता को पूरी कर देता है। उसका आधिदैविक रूप है, 'तात मात सब बिधि तुलसी की।' ये जगन्माता है। ये विश्व के माँ-बाप है। ये सबकुछ है। 'सद्‌गुन सुरगन अब अदिति सी।' तुलसीजी कहते हैं, ये कथा कैसी है? सद्‌गुरुरूपी देवगणों को प्रकट करने की अदिति है। और आध्यात्मिक रूप है सत्य, प्रेम, करुणा। और हमें भौतिकता तो प्रारब्ध में भी मिल जाती है। थोड़े पुरुषार्थ से भी मिल जाती है। दैविक रूप से थोड़ी दैवी संपदा भी मिल जाती है। लेकिन उसकी जो अध्यात्म संपदा है, मैंने जो निचोड किया है सो सत्य, प्रेम, करुणा है।

तो, 'मानस-जमुना' के भी तीन रूप है। आखिर में उपसंहार देख लिया जाय फिर एक बार कि यमुनाजी उपर से नीचे आई है, 'रामचरित मानस' भी शंकर के मुख से आखिरी व्यक्ति तक गई है। यमुनाजी के दो कुल है, दो किनारे हैं, जिसको वल्लभाचार्य ने नितंब कह दिये। शंकर ने अपने संकेत करते हुए उसको ओष्ठ कह दिये। तो यमुनाजी के किसी भी प्रवाह के दो किनारे होते हैं। हमारी 'मानस-जमुना' के भी दो किनारे हैं। 'लोक बेद मत मंजुल कुला।' कथा की जमुना ये दो कुलों को छूती हुई बह रही है। यमुना श्यामवर्णी है। 'रामचरित मानस' भी श्यामवर्णी है। यमुनाजी कईयों का परिपालन करती है। 'रामचरित मानस' भी हम जैसे कईयों का परिपालन करता है। 'रामायण' कईयों का योगक्षेम निर्वहण करती है। यमुनाजी आखिर में गंगा को मिलकर समुद्र में मिल जाती है गंगासागर में। और ये प्रवाह जो है 'रामचरित मानस' का, तुलसी कहते हैं, 'राम स्वरूप सिंधु समुहानि।' राम के स्वरूप में विलीन हो जाती है; 'रामचरित मानस' की कथा रामस्वरूप में हमें लीन कर देती है। यमुना कलिमलहारी है, मन के मल को धोती है। जमुनाजी का प्रवाह सतत चलता है। 'मानस' की कथारूपी जमुना का प्रवाह भी सतत चलता रहता है।

तो मेरे भाई-बहन, यमुना माँ की कुछ वाक् सेवा की, वाणी से पूजा की। आपने सुनकर पूजा की। कभी मैंने कहा था कि हनुमानजी पांच वस्तु का समूह है। हनुमानजी के पास शब्द है। शब्दलावण्य, शब्दवैभव, शब्दसंपदा हनुमंत के समान किसके पास है? हनुमानजी संगीत के आचार्य माने गये हैं। एक हनुमंतमत संगीत में प्रचलित है। तो हनुमानजी के पास सूर भी है। हनुमानजी के पास ताल भी है। उसके पास तालज्ञान है। और हनुमानजी कायम लय में रहते हैं। और पांचवां है नृत्य। हनुमान स्वयं नृत्य करते हैं। कहते हैं कि यमुना में पांच चीज़ है। यमुना में शब्द है, 'कल'...'कल'...'कल' एक सुंदर शब्द है यमुना के पास। उसकी लहर को कंकन की आवाज़ महाप्रभुजी कहते हैं। यमुनाजी के पास शब्द है, अवश्य। नदियां बोलती है। काश! हम सुन पाये। यमुनाजी के पास सूर है। हमारे यहां एक वाद्य है जलतरंग। उसकी तरंगों में सूरावलि है। यमुना के पास ताल है। ये जब एक चट्टान से नीचे गिरे उसकी तलबद्धता है साहब! और यमुना के पास अपना लय है। और यमुना नर्तन भी करती है। मेरी ये 'मानस-जमुना' में भी शब्द तो है ही। और 'रामचरित मानस' में सूर भी है। 'रामचरित मानस' में तालबद्धता है। और 'रामचरित मानस' में लय भी है। और 'रामचरित मानस' में नर्तन भी है। राम स्वयं नाचते हैं। सुतीक्ष्ण नाचता है। ये नाचने का ग्रंथ है। तो यमुना में पांचों है। और 'रामचरित मानस' में भी पांचों है। और हम जो कीर्तन करते हैं उसमें भी शब्द है। उसमें भी सूर है। उसमें भी लय है। उसमें भी ताल है। उसमें भी आप अपने आपको रोक नहीं सकते और नर्तन करते हैं, तो नृत्य भी है।

कल भगवान राम के ब्याह की कथा संक्षेप में गाई गई। दूसरा सोपान 'अयोध्याकांड' है। उसके आरंभ में बहुत सुख का वर्णन है। रामराज्याभिषेक की बातें बहुत सुख दे रही थी और इतना ही दुःख का वर्णन है रामवनवास का। मैं इतना ही सूत्र के रूप में कहना चाहूंगा कि 'मानस' के दूसरे सोपान से कि मानवी के जीवन में सुख की जितनी मात्रा होती है इतनी ही दुःख की मात्रा होती है। जिसके पास अत्यंत सुख है उसको अत्यंत दुःख भी होता है। ये नियम है। अवधवासीओं को इतना सुख है कि बस मुशलाधार सुख की वर्षा हो रही है। और यहां देवताओं ने सरस्वती को प्रेरित किया। सरस्वती ने मंथरा को प्रेरित की। मंथरा ने कैकेयी को प्रेरित की और पूरा सुख, दुःख में पलट गया! राज्याभिषेक होते-होते राम को चौदह साल का वनवास हो गया!

राम-लक्ष्मण-जानकी निकल पड़े चौदह साल के लिए। तमसा के तीर प्रभु ने पहली रात्रि मुकाम किया। राम-लक्ष्मण-जानकी का रथ शृंगबेरपुर आता हैं। राम-लक्ष्मण-जानकी गंगा पार होते हैं। दूसरे दिन भगवान वहीं से यात्रा करते हैं। भरद्वाज ऋषि के आश्रम में आये हैं। फिर भगवान आगे जाके यमुना में स्नान करते हैं। और फिर भगवान वाल्मीकि के आश्रम में आये। वाल्मीकिजी भगवान को चौदह आध्यात्मिक स्थान बताते हैं। राम-लखन-जानकी चित्रकूट निवास करते हैं।

यहां तुलसी ने प्रसंग बदलते हुए कहा कि सुमंत अयोध्या पहुंचते हैं। बाद में महाराज दशरथजी रामवियोग में छः बार राम महामंत्र का स्मरण करते हुए प्राणत्याग करते हैं। भरत आते हैं। वशिष्ठजी के कहने पर महाराज दशरथजी की क्रिया हुई। आखिर में निर्णय लिया गया कि पूरी अयोध्या को लेकर भरतजी चित्रकूट जाये और वहां जाने के बाद भगवान और भरत मिलकर जो निर्णय करे सो हम कुबूल करे। चित्रकूट की यात्रा निकली है। रास्ते में कुछ विघ्न भी आये हैं। उसको पार करते-करते भरतजी चित्रकूट पहुंचते हैं। राम-भरत मिलन हुआ। जनकजी भी वहां आये। सभायें मिलती रही। आखिर में यही निर्णय हुआ कि भरत चौदह साल अयोध्या की व्यवस्था करे। राम चौदह साल पिता की आज्ञा से वन में रहे। भरत को कृपा करके प्रभु ने पादुका समर्पित की। तत्त्वतः ये देश पादुका का है। भारतवर्ष पद का है ही नहीं। पद तो संभाला जाता था रामराज्य में केवल ट्रस्टीशीप विचार से। मूलतः देश पादुका का है। भरतजी ने पादुका को शिरोधार्य की है। भरतजी नित्य पादुका की पूजा करते हैं और पादुका को पूछपूछकर राजकार्य करते हैं।

'अरण्यकांड' में भगवान राम, लक्ष्मण और जानकी चित्रकूट छोड़ने का निर्णय करते हैं। अत्रि के आश्रम में जाते हैं। अनसूया से जानकीजी आशीर्वाद प्राप्त करती है। वहीं से भगवान आगे बढ़ते हैं। महात्माओं को मिलते-मिलते प्रभु कुंभज ऋषि के आश्रम में आये। विचारविमर्श हुआ। राम-लक्ष्मण-जानकी गोदावरी के तट पर पधारे। बीच में गीधराज जटायु से मैत्री हुई और प्रभु पर्णगृह बनाकर पंचवटी में निवास करते हैं। एक दिन शूर्पणखा आई। दंडित हुई। खर-दूषण को उकसाया। चौदह हजार की सेना लेकर खर-दूषण आये। प्रभु ने सबको निर्वाणपद दिया। खर-दूषण के निर्वाण के बाद शूर्पणखा रावण को उकसाती है। रावण आया सीता के अपहरण के लिए इसके पहले प्रभु ने योजना बना दी। सीता अग्नि में समा गई। प्रतिबिंब रखा। और मृगवध के लिए भगवान दौड़ते है। बीच में रावण यति के वेश में आकर जानकीजी का अपहरण करता है। जटायु की शहीदी हुई। अशोकवाटिका में अशोकवृक्ष के नीचे रावण ने यत्नपूर्वक जानकी को रखा। भगवान राम और लक्ष्मण जानकी की खोज में निकल पड़े। जटायु को पितृतुल्य आदर देकर संस्कार किया। वहीं से भगवान आगे बढ़े। रास्ते में कबंध नामक राक्षस मिला उसको गति देके प्रभु शबरी के आश्रम में पधारे। शबरी भगवान का दर्शन करके धन्य होती है। प्रभु ने शबरी को निमित्त बनाकर हमको नव प्रकार की भक्ति की विधा बताई। प्रभु की भक्ति की चर्चा सुनकर जहां से कभी वापस लौटना न पड़े वहां योग अग्नि में शबरी चली गई। राम-लक्ष्मण सीता की खोज करते हुए पंपासरोवर गये। वहां नारद मिले। वहां तीसरा सोपान पूरा हुआ।

चौथे सोपान में 'किष्किन्धाकांड' में राम-लक्ष्मण आगे जाते हैं। हनुमंत और राम का मिलन होता है। 'मानस' को एक ओर दृष्टि से देखो तो सब कांड मिलन के कांड है। 'बालकांड' सीता-राम के मिलन का कांड है। 'अयोध्याकांड' भरत-राम के मिलन का कांड है। 'अरण्यकांड' शबरी और राम के मिलन का कांड है। 'किष्किन्धाकांड' हनुमान और राम के मिलन का कांड है। और 'सुन्दरकांड' हनुमान और जानकी के मिलन का कांड है। फिर आप 'लंकाकांड' में जाओ तो वहां मिलन ही मिलन है। वहां निर्वाण ही निर्वाण है। सब समा गये हैं हरि में। सब डूब गये हैं हरि में। अथवा तो पुनः देवलोक से आये हैं दशरथ और राम का मिलन है 'लंकाकांड' में। और फिर 'उत्तरकांड' में तो 'अमित रूप प्रगटे तेहि काला।' मिलन ही मिलन है। और सबसे बड़ा मिलन है गरुड और भुशुंडि का। यहां मिलन ही मिलन है। यहां वियोग है ही नहीं। दुनिया की दृष्टि में तो संयोग-वियोग होता है।

तो, हनुमान और राम मिले। सुग्रीव से भेंट हुई। बाली का निर्वाण हुआ। सुग्रीव को राजा अंगद को युवराज बनाया। प्रभु ने चातुर्मास किया प्रवर्षण पर्वत पर। सीता की खोज का अभियान चला। हनुमान की टुकडी दक्षिण में गई। स्वयंप्रभा का मार्गदर्शन मिला। सब समुद्रतट जा पहुंचे। संपाति ने मार्गदर्शन किया कि सीताजी अशोकवाटिका में है। जामवंत ने आह्वान किया हनुमानजी को। और हनुमानजी पर्वताकार हुए। जामवंत से मार्गदर्शन पाकर हनुमानजी जानकी की तलाश करने के लिए तैयार हुए; वहां 'किष्किन्धाकांड' पूरा कर दिया और 'सुन्दर' का आरंभ हुआ -

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई।
सहि दुख कंद मूल फल खाई।।

बाबा ने रास्ते के बिघ्न दूर करते हुए समुद्र पार किया और लंका में प्रवेश किया। विभीषण से भेंट हुई। विभीषण ने युक्ति बताई और हनुमानजी महाराज अशोकवाटिका में माँ जानकी से मिलते हैं। पहचान हुई। मधुर फल खाये। उसके बाद हनुमानजी पकड़े गये। रावण ने मृत्युदंड घोषित किया। विभीषण ने आकर रोका कि नीति ना कहती है। दूत को मृत्युदंड न दिया जाय। हनुमानजी महाराज की पूंछ जलाने की योजना हुई। हनुमानजी महाराज ने उलट-पुलट लंका जला दी। समंदर में स्नान किया। माँ के पास जाकर चूड़ामणि ली और हनुमानजी कार्य सफल करके लौट गये। सुग्रीव सबको लेकर रामजी के पास पहुंचे। जामवंत ने राम के सामने हनुमंतकथा का गायन किया। प्रभु ने कहा कि अब विलंब न किया जाय। और भगवान सागर के तट पर डेरा डालते हैं। यहां रावण के द्वारा निष्कासित विभीषण राम की शरण में आता है। मंत्रणा होती है। तीन दिन समुद्र के तट पर प्रार्थना के लिए निर्णय किया। तीन दिन के बाद प्रभु ने धनुषबाण उठाया। ब्राह्मण का रूप लेकर समुद्र भगवान की शरण में आता है। प्रभु से कहता है, महाराज, सेतु बनाईए। जोड़ने का विचार तो राम का अवतारकार्य है।

'लंकाकांड' के आरंभ में काल का वर्णन फिर सेतुबंध किया और प्रभु ने कहा कि ये उत्तम धरती है। यहां भगवान शिव की स्थापना की जाय। रामेश्वर भगवान की स्थापना हुई। सच्चा सेतु तो यही था कि शैव और वैष्णव मिल गये। विष्णु और शिव में कोई भेद नहीं है, ऐसे धर्म का संस्थापन किया भगवान राम ने। भगवान की सेना ने सेतुबंध से सागर पार किया। लंका के सुबेल पहाड पर प्रभु ने डेरा डाला। यहां रावण भी मनोरंजन प्राप्त करने के लिए सामने शिखर पर आया। भगवान ने उसका महारसभंग किया। दूसरे दिन अंगद राजदूत के रूप में संधि का प्रस्ताव लेकर गया लेकिन अंगद की मंत्रणा सफल नहीं हुई। युद्ध अनिवार्य हुआ। आखिर में भगवान राम और रावण का तुमुल युद्ध होता है और इकत्तीस बाणों के द्वारा प्रभु रावण को निर्वाण देते हैं। रावण का संस्कार हुआ है। विभीषण का राजतिलक हुआ है। राम-लक्ष्मण-जानकी और उसके कुछ सखा पुष्पकारूढ होते हैं। और भगवान विमान से अयोध्या की ओर यात्रा में निकले हैं। और हनुमानजी को भेज दिया कि भरत को खबर कर दो कि ठाकुर आ रहे हैं। और यहां विमान शृंगबेरपुर ऊतरा। गरीब लोग को चौदह साल बाद प्रभु ने जाकर के गले लगाया। यही तो थी रामराज्य की यात्रा।

'उत्तरकांड' के आरंभ में अयोध्या के विरह की स्थिति का वर्णन है। इतने में श्री हनुमानजी डूबते को मानो कोई पोत मिल जाये ऐसे आ गये। प्रभु आ रहे हैं ये सुनते ही भरत के हर्ष की कोई सीमा न रही। विमान सरजू के तट पर ऊतरता है। और यहां सब बंदर और विभीषण आदि निशिचर ये जो आये हैं वो विमान से ऊतरे तब मनष्य के शरीर में ऊतरे हैं। ये तुलसी की विचारधारा है। तो 'मानस'

> यमुनाजी उपर से नीचे आई है, 'रामचरित मानस' भी शंकर के मुख से आखिरी व्यक्ति तक गई है। यमुनाजी के दो कुल है, दो किनारे हैं। हमारी 'मानस-जमुना' के भी दो किनारे हैं। 'लोक बेद मत मंजुल कुला।' कथा की जमुना ये दो कुलों को छूती हुई बह रही है। यमुना श्यामवर्णी है। 'रामचरित मानस' भी श्यामवर्णी है। यमुनाजी कईयों का परिपालन करती है। 'रामचरित मानस' भी हम जैसे कईयों का परिपालन करता है। यमुनाजी आखिर में गंगा को मिलकर समुद्र में मिल जाती है गंगासागर में। 'रामचरित मानस' की कथा रामस्वरूप में हमें लीन कर देती है। जमुनाजी का प्रवाह सतत चलता है। 'मानस' की कथारूपी जमुना का प्रवाह भी सतत चलता रहता है।

मानव बनाने की बिलकुल सुंदर प्रक्रिया का नाम है। सब मिले। भरत और राम मिले तब तो क्या कहे? सबको लिये प्रभु कैकेयी के भवन गये। कैकेयी की ग्लानि का विदारण किया। सुमित्रा को मिले और कौशल्या के पास गये तब प्रेम छा गया। जानकीजी को माताओं ने स्नान करवाया। प्रभुने अपने तीनों भाईयों को स्नान करवाया। और चौदह साल के बाद राज्यपोशाक धारण किया। वशिष्ठजी ने दिव्य सिंघासन मांगा। पृथ्वी को प्रणाम करके, सूर्य को प्रणाम करके, दिशाओं को प्रणाम करके, प्रजाजनों को प्रणाम करते हुए गुरुदेव और ब्राह्मण देवताओं को प्रणाम करते हुए, माताओं को प्रणाम करते हुए भगवान गादी पर विराजित हुए। जानकीजी विराजित हुई और विश्व को रामराज्य देते हुए वशिष्ठजी ने भगवान राम के भाल में तिलक किया। दिव्य रामराज्य की स्थापना हुई।

छ मास बीत गये। हनुमानजी को छोड़कर सब मित्रों को प्रभु ने बिदा दी। एक हनुमानजी पुन्यपुंज है वो राम के पास रुके। दिव्य रामराज्य का वर्णन है जो गांधीबापू चाहते थे, हम सब चाहते हैं, ऐसा रामराज्य का अद्भुत वर्णन तुलसी ने किया है। फिर परमात्मा के दाम्पत्य से दो पुत्रों का जनम हुआ है। लव-कुश, जानकी ने दो पुत्रों को जनम दिया। तीनों भाई के घर भी दो-दो पुत्र प्रकट हुए हैं। अयोध्या के वारिस का नाम बताके तुलसी ने रघुवंश की कथा को वहां रोक दी। 'रामचरित मानस' में सीता का दूसरी बार का त्याग, फिर वो वन में आश्रम में पुत्रों को जनम दे ये सब प्रसंग को तुलसी ने हटा दिये हैं। ये दुर्वाद-अपवादवाली बात सब निकाल दी।

उसके बाद कागभुशुंडि का चरित्र है। गरुड की जिज्ञासायें है और आखिर में गरुड भुशुंडि बाबा को सात प्रश्न पूछते हैं। मानों सातों प्रश्नों सातों कांडो का निष्कर्ष है। गरुड के सामने भुशुंडिबाबा ने कथा को विराम दिया। गंगा-जमुना के तट पर बाबा याज्ञवल्क्य महाराज ने भरद्वाजजी के सामने कथा को विराम दिया कि नहीं ये स्पष्ट नहीं है। और कलिपावनातार पूज्यपाद गोस्वामी तुलसी अपने मन को कथा सुना रहे थे वहां ये कथा को विराम देते हुए कहते हैं, इस कलियुग में ओर कोई साधन इतना सरल नहीं है। स्मृति आये तो हरि भज लो। गाने को मन करे तो चौपाईयां गा लो। सुनने को मन करे तो कहीं कोई गाता हो वहां जाकर के सुन लो। राम का सिमरन ये सत्य है। राम का गायन ये प्रेम है और राम का श्रवण ये किसी की करुणा है। अंततोगत्वा ये तीन सूत्र ही निकलते हैं 'रामचरित मानस' के सार में। तो ये निचोड़ है। ये मेरी व्यासपीठ की प्रस्थानत्रयी है। तीन ही धारा है-सत्य, प्रेम और करुणा।

तो तुलसी ने, याज्ञवल्क्य ने, महादेव ने, बाबा भुशुंडि ने अपने श्रोताओं के सामने कथा को विराम दिया। ये चारों परम आचार्यों की करुणामय छाया में बैठकर माँ यमुना की कृपा से परमधाम, परमतीर्थक्षेत्र यमुनोत्री की छाया में बैठकर नव दिन की कथा जो गाई जा रही थी उसको मेरी व्यासपीठ भी विराम देने की ओर है तब आखिर में क्या कहे? लेकिन सबसे पहले तो मैं मेरी अतीव प्रसन्नता व्यक्त करता हूं कि जब गंगोत्री में कथा थी तब मेरे मन में ये बात उठी थी कि कभी जमुनोत्री में भी कथा गाई जाय। इतनी सालों के बाद हम सबका ये मनोरथ माँ यमुना की कृपा से संपन्न हो रहा है। और उसमें निमित्त बना एक हमारा व्यासपीठ को पूरा का पूरा समर्पित परिवार। मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं कि यजमान परिवार का मनोरथ भी संपन्न हुआ। वो धन्यवाद के पात्र है। जिस पर प्रभु की कृपा होती है वो ही इसमें निमित्त बन जाते हैं और ऐसे कार्य संपन्न होते हैं। ऐसे कार्य संपत्ति से नहीं पूरे किये जाते हैं, संस्था से नहीं पूरे किये जाते हैं। ये अंत:करण की निष्ठा से ओर पक्के भरोसे के कारण पूरा होता है। यहां पूजनीय पंडितगण है; सबने ही बहुत सद्भाव के साथ आशीर्वाद दिया। और यहां की जनता ने, प्रशासन ने, अग्रणीओं ने सबने मिलकर इस प्रेमयज्ञ में अपनी-अपनी निर्मान आहुतियां डाली है। मैं सबको बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूं। बहुत-बहुत प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। मेरा गाना बंद हो जाएगा, आपका सुनना बंद हो जाएगा लेकिन सिमरन जारी रखना। मेरी अंत:करण की प्रवृत्ति कहती है, यमुनाजी बहुत प्रसन्न है। और सबसे प्रसन्न तो हुए होंगे पघडीवाले (त्रिभुवनदादा)। सब खुश है। सभी चेतनाएं प्रसन्न है ऐसा मैं महसूस कर रहा हूं। और ये नव दिवसीय रामकथा 'मानस-जमुना' का पूरा फल हम सब मिलकर माँ यमुना के प्रवाह को समर्पित कर दें, 'हे माँ, तेरी कृपा से ये सब संपन्न हुआ है और तेरा तुझको अर्पण।'

मानस-मुशायरा

कितना आसां था तेरे हिज्र में मर जाना।
फिर भी एक उम्र लगी जान से जाते-जाते।
उसकी वो जाने उसके पास वो वफ़ा था कि नहीं,
तुम फ़राज़ अपनी तरफ से तो निभाते जाते।

– अहमद फ़राज़

बरसों की रस्मे राह थी एक रोज उसने तोड़ दी।
हुशियार हम भी कम नहीं, उम्मीद हमने छोड़ दी।

– जावेद अख्तर

उसे बचाये कोई कैसे टूट जाने से?
वो दिल जो बाज़ न आये फरेबखाने से।
वो एक सख्श तो एक ही लम्हे में टूट-फूट गया।
जिसको तराशा था मैंने एक ज़माने से।

– मुनव्वर राणा

सिर्फ़ खंजर नहीं आंखों में पानी भी चाहिए।
खुदा दुश्मन भी मुझको खानदानी चाहिए।

– राहत इन्दौरी

वक्त ने ऐसी ठोकर मारी।
सीधी हो गई चाल हमारी।

– वसीम बदायूं

कविता, तू यदि कविता रहेगी
तो तेरे साथ मीरां रहेगी,
तेरे साथ राधा रहेगी,
तेरे साथ कृष्ण रहेगा।
कविता, अगर तू अकेली हो गई
तो तेरे साथ न कृष्ण होगा,
न राधा होगी, न मीरां होगी।

– इमरोज़

क्वचिदन्यतोऽपि

'रामचरित मानस' मेरा मार्गी-मार्ग है, 'भगवद्गीता' मेरा गार्गी-मार्ग है

संस्कृत सत्र-२०१७ में मोरारिबापू का प्रासंगिक प्रवचन

सब से पहले जिस ऋषितुल्य व्याससाहब को 'वाचस्पति अवोर्ड' आपके चरणो में रखकर हम आपकी वंदना कर रहे हैं ऐसे व्याससाहब को मेरा प्रणाम। इस वंदना को प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करने के लिए आए आपके परिवार के सदस्यों को भी मेरा नमन। जिसके मार्गदर्शन में और अन्य वरिष्ठ विद्वान आप शरीर से मौजूद नहीं है, इन सबका आशीर्वाद लेकर यह 'संस्कृतसत्र' प्रारंभ हुआ; आदरणीय मुरब्बी श्री गौतमभाई, मेरे परम स्नेही आदरणीय विजयभाई, नई दिल्ही से आये हुए हमारे परम स्नेही आदरणीय प्रोफेसरसाहब, जिन्होंने 'संस्कृतसत्र' में पूरा प्रवचन संस्कृत वाणी में कहकर हमें विशेष प्रसन्नता प्रदान की। आपका बहुत-बहुत हार्दिक स्वागत करता हूं; नमन करता हूं। हमारे गुरुकुल के छात्रों को संस्कृत का अध्ययन करानेवाले पूज्य आचार्यश्री; कब कहां से उड़कर आते हैं पता नहीं, ऐसे अतिथि के रूप में आये हमारे महात्माजी; आप सभी श्रोता भाई-बहन और देवीविमर्श के लिए जो देवीस्वरूपा माताएं, बहनें, बेटियां, यहां आई, अपना स्वाध्याय और प्रवचन प्रस्तुत किया यह सभी को मेरा बहुत-बहुत प्रसन्नता के साथ प्रणाम। बहुत आनंद दिया आपने। एक सौ सत्तर देश में विज्ञान के सदुपयोग करते हुए यह कार्यक्रम देखा गया, सुना गया; मुझ पर भी इन तीन दिनों में कई देश-विदेश से फोन आते रहे, मिडिया के द्वारा और एक सौ सत्तर देश और पूरे हिन्दुस्तान में भी यह तीन दिनों में देवी, देवी, देवी! मुझे चिंता एक ही है कि देवताओं का अब क्या होगा? लेकिन जब तक देवियां है देव सुरक्षित है।

यदि स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः।

गंधर्वराज पुष्पदंत कहता है, मैं किन शब्दों में प्रसन्नता व्यक्त करूं? उपनिषदकारों ने कहा, 'स्वाध्याय प्रवचनां न प्रमदितव्यम्।' मैं इनमें से आधा ही करता हूं। प्रवचन में प्रमाद नहीं करता लेकिन मेरा इतना स्वाध्याय नहीं है बाप! जो आप स्वाध्याय करके, साधना करके आये और आपने केवल स्वाध्याय ही नहीं किया। आपके प्रवचनों के समय मैंने देखा, आप अंतरंग स्थिति भी महसूस कर रहे थे। इसलिए आपकी तपस्या को पुनः एक बार मेरा प्रणाम।

सोलह साल की बात कही अभी। गुजरातीमां एम कहेवाय छे, सोळे सान आवे। अमने पण सोळ सत्र पछी आ सान आवी के आवुं कंईक करवुं जोईए के जे बहु ज महत्त्वनुं रह्युं। अने ए सोळे सान आवी एटले सत्रहवें सत्र में हमारा सत् रह गया; सत् उजागर हुआ। बहन ने कहा, ससुराल में रसोई करनी है तो चिंता रहती है। अच्छी से अच्छी रसोई बनी हो फिर भी ससुराल का एक स्वभाव होता है। तो बाप! कैसे आपको पता लग गया कि बहनों के सिवा, बेटियों के सिवा, माताओं के सिवा किसीको पता नहीं होता कि बाप को किस प्रकार की रसोई प्रिय है? आप सबने ऐसे व्यंजन, ऐसा भोजन, ऐसी सात्त्विक सामग्री हमारे थाल में परोसी है जो आ भावतुं भोजन छे एवुं आप सौए कह्युं अने आप सौए कह्युं। तो बाप! आप सब तलगाजरडा की बेटी, माता, बहन जो भी आपका स्थान है; तो बेटियों को चाहिए कि बाप बहुत व्यस्त हो तो भी बाप आपके घर आ सके न आ सके लेकिन आप बाप के घर में साल में एकाद बार आया करो।

हंसके बोला करो, बुलाया करो।
यह बाप का घर है, आया-जाया करो।

राम जगतभर का बाप है। विश्व पिता है राम। 'मोरे प्रभु तुम गुरु पितु माता।'-मानस। लेकिन यह राम विश्व का बाप राज्याभिषेक के पश्चात् अपने सखाओं को बिदा देते हैं तब सबको कुछ ना कुछ प्रसाद देते हैं। प्रभु के कंठ में जो माला थी वो अंगद को दी। अंगद को कहा, सुग्रीव खड़ा है उसको संकेत किया, एक बार मेरे कंठ की माला सुग्रीव, तेरे कंठ में डाली थी उसके बाद वाली पर तेरा विजय हुआ। जरा भी अंगद के प्रति पक्षपात किया, जरा भी गरबड़ की तो याद रखना, आज मैं माला उसके कंठ में डाल रहा हूं। एक संकेत कर दिया। भरतजी ने अपने हाथ से जो सुत कांता था और बुना भी था; एक ऐसी चदरियां बुनी थी; भरत के हाथों से विभीषण को दिलाई। इसका मतलब यह कि रघुवंश स्वाश्रयी था। जो चौदह साल पादुका की छांया में रहकर राजा का प्रेमपूर्वक संचालन करता रहा वो भी वस्त्र बुनता है क्योंकि ताना-वाना बुनना, सबको एक रखना 'संगच्छध्वम्, सं वदध्वम्' वो ही तो सेतुबंध की कथा; वो ही तो रामकथा है। तो उसको यह दिया। किसीको कुछ दिया, किसीको कुछ दिया लेकिन एक केवट, एक वंचित, एक उपेक्षित; आज भी कुछ समाज को हम थोड़ी उस दृष्टि में देख रहे हैं! अब तो परमात्मा ने अच्छा किया, सबका दृष्टिकोण बदला है, बदलना चाहिए। उस समय क्या रहा होगा? वो भगवान राम की क्रांति थी। एक निषादी केवट उसको जब बिदा दी गई, प्रभु ने उसको कुछ नहीं दिया साहब! यह सरासर अन्याय था! विभीषण लंका का नरेश है; सोने की लंका है। उसको कुछ न देते तो भी चलता; सुग्रीव को न देते तो भी चलता; अंगद को न देते, भविष्य का यह राजा है। लेकिन सबको कुछ न कुछ दिया लेकिन जब केवट को देना था, भगवान को लगा, जिससे मैंने कुछ मांगा उसको मैं क्या दूं?

मागी नाव न केवटु आना।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।।

उसको परमात्मा ने कहा, मैं तुम्हारे पास भिक्षुक के रूप में मांग रहा हूं। रो पड़ा आदमी! महाराज! अब मैं पहचान चुका हूं कि आप कौन है? लेकिन आज मेरे से मांग रहे हैं? मैं क्या दूं? सबके पास कुछ न कुछ देने की क्षमता है, चाहिए दिल। मैं मांगता हूं। क्या? तुम्हें जब समय मिले तो 'सदा रहेहु पुर आवत जाता।' मेरी अयोध्या में तू आते-जाते रहना। क्योंकि मैं व्यस्तता के कारण न भी आ सकूं। बहनों, 'सदा रहेहु पुर आवत जाता।' मैं बहुत प्रसन्नता व्यक्त करता हूं और यह देवीविमर्श के प्रसंग पर मैं किन शब्दो में, किस रूप में बधाई दूं? प्रसन्नता व्यक्त करूं? शब्दो में तो कर ही रहा हूं। मैं श्रवण में कभी प्रमाद नहीं करता। स्वाध्याय मेरा इतना नहीं होता। मैं तो प्रासादिक बोले जा रहा हूं। त्रिभुवनी चेतना मुझे जो प्रेरणा करे वो मैं कहे जा रहा हूं। लेकिन मेरा श्रवण करना इनमें कभी मेरा प्रमाद नहीं होता। और प्रवचन में तो सवाल ही नहीं। करता ही रहता हूं, इनमें कोई सवाल ही नहीं।

आप इतना स्वाध्याय करके आये इस मौके पर मैं कैसे अपनी प्रसन्नता व्यक्त करूं? शब्दो में तो है ही प्रसन्नता। अंत:करण में भी प्रसन्नता लेकिन बिना पूछे वरिष्ठों को मैं एक विशेष प्रसन्नता मेरे सभी भाई-बहनों के साथ व्यक्त करना चाहता हूं और यह वो कि प्रतिवर्ष वाचस्पति अवोर्ड तो दिया ही जाता है और उसमें बहनों को भी दिया जाता है। विदूषी को दिया गया यहां से यह बहुत बड़ा समादर था मेरी दृष्टि में, लेकिन मेरी इच्छा है कि अगली साल से यहां से दूसरा अवोर्ड दिया जाय जिसमें केवल महिला-विदूषी को अवोर्ड दिया जाय जो बिलकुल समान हो और उसका नाम हो 'भामती अवोर्ड।' 'वाचस्पति अवोर्ड' और उसकी पत्नी के नाम से 'भामती अवोर्ड।' ठीक है? वो भूली जा रही है, यह विस्मृत हो जा रही है। तो बाप! बहुत-बहुत धन्यवाद। आपकी प्रसन्नता के लिए मैं नमन करता हूं। मेरे पास कुछ प्रस्ताव आये क्योंकि हनुमानजी की कृपा से सबकी इच्छा होती है कि यहां ओर सेवा की जाए, ओर सेवा की जाए। तो मैं जयदेव को कह रहा था कि यहां तो गंगा बहती है, बहाई नहीं जाती। त्रिभुवनी चेतना प्रेरणा करे; कुछ बात बहे तो बहे तब तक बहे, न बहे तो नथी रमता!

भामती देवी, आप तो जानते हैं साहब कि जब शास्त्र में डूबे रहते थे वाचस्पति महोदय और 'ब्रह्मसूत्र' पर उसका भाष्य चल रहा था और उसी समय बिलकुल नेपथ्य में रहकर एक मेरे देश की भामती नामक देवी, न कभी उसको डिस्टर्ब किया न कभी कुछ उसको विक्षेप किया। मैं छोटा था तब डोंगरे महाराज की कथा सुनी थी। उसमें यह कथा सुनी थी कि अचानक दीप बुझ गया और कहते हैं कि भामतीजी वो जलाने जाती है। पति के इस पारमार्थिक कार्य में वो दीप जलाकर जाती है उसी समय उसको देखा तो लगा कि यह कौन है? याद ही नहीं कि मेरी शादी हुई है! तो कहा कि आप मेरी धर्मपत्नी है? कहे, हां। कभी वो कुछ बोली नहीं! बोले क्या? इतना सौभाग्य जो मिला। इससे ज्यादा प्राप्त भी क्या करना था? तब कहते हैं कि उस समय उसने निर्णय किया कि जिस ग्रंथ का मैं भाष्य कर रहा हूं उस टीका का नाम मैं 'भामती टीका' रखूंगा। तो 'भामती अवोर्ड' भी इसी लेवल में अगली साल में आप सब व्यवस्था करना। और वो केवल कोई भी बहन-बेटी को दिया जाए। तो एक ऋषि को दिया जाए अवोर्ड और एक ऋषिका को अवोर्ड दिया जाए। तो यह मेरी प्रसन्नता मैं किस रूप में पेश करूं?

मेरे भाई-बहन, शुभ भाव है, आप सबने उसको आदर दिया अगले साल से यह भगवद्कृपा से शुरू होगा। आपने देवीविमर्श कहा। कुछ बाकी नहीं रखा। और बहन जब बोले! कितनी बेफ़िक्र, निर्भीक स्थिति में अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया! इतना सुंदर वक्तव्य! शक्ति, माँ, बेटी, बहन, देवी उसको हम छोड़ नहीं सकते। उसके ईर्द-गिर्द में परिकम्मा करने से ही नई ऊर्जा प्राप्त होती है, इसलिए देवी का महत्त्व बहुत है। और आज के संसार में सदियों से जब माताएं पीड़ित होती रही, एकदम बहुत उपेक्षा होती रही मातृशरीर की ऐसे समय में मुझे लग रहा है यह कार्य विशेष रूप में हुआ। इससे ज्यादा जागृति आएगी, विशेष प्रेरणा प्राप्त होगी और उसका श्रीगणेश बहनों ने किया उसकी मुझे खुशी है।

तुलसी ने बहनों के पक्षधर होकर कहा, 'का न करहि अबला प्रबल।' इसको तुम अबला कहते हो? तुलसी की कुछ पंक्तियां लेकर तुलसी पर ऊंगलियां उठाई गई है या तो प्रक्षेप है या तो गुरुमुखी हम सीखे नहीं इसलिए यह पंक्तियों का हम दुरुपयोग करते हैं और तुलसी पर बिना सोचे ऊंगली उठ रही है कि वह नारीनिंदक थे! तलगाजरडा को पूछो। वो त्रिभुवनी चेतना के द्वारा उसका सही अर्थ बताने की कोशिश करेगा। तुलसी कहे, 'का न करहि अबला प्रबल।' जिसको तुम अबला-अबला-अबला कहे जा रहे हो वो क्या नहीं कर सकती? तुलसी का मत आया 'मानस' में। अबला अबला नहीं है, प्रबला है। 'का न करहि अबला प्रबल। केहि जग न कालहि खाइ।' काल किसको नहीं खाता? 'का न जलहि पावक सक।' अग्नि किसको नहीं जलाता? हां, आत्मा को न जलाए, पानी उसको न भीगोए, हमारे यहां 'गीता' का न्याय आया। 'का न जलहि पावक सका। का न समुद्र समाई।' समुद्र में क्या नहीं समा जाता? उसी अग्नि के समान सूर्य की तुलना में मातृशरीर को रखते हुए तुलसी ने कहा, 'का न करहिं अबला प्रबल।' अबला प्रबल है, वो क्या नहीं कर सकती?

मेरा तो मार्ग ही है, हम मार्गीबावा है, मार्गी साधु है; एक प्रवाह है। लेकिन मेरे दो कुल है, दो किनारे हैं, एक गार्गी और एक मार्गी। गार्गी मानी वेद, मार्गी मानी

रूखड़। कल मुझे हरीशभाई भी स्मरण दिला रहे थे कि बापू, विष्णुदेवानंदगिरि मेरे गुरुजी, मेरे दादा के छोटे भाई जो महामंडलेश्वर 'कैलास आश्रम' में रहे, उससे मुझे जो मिला वो मेरा गार्गी प्रवाह है और मेरा मूल तलगाजरडा का मार्गी प्रवाह है। दो कुलों में हम बह रहे हैं। उसमें नारीशक्ति की बड़ी महिमा है; बड़ी महिमा है और यह विशेष उजागर होनी चाहिए। कितनी महिमावंत आपकी वाणी! इससे हम बहुत प्रसन्न हुए हैं।

मुझे विषय नहीं दिया गया कि आपको यह विषय पर बोलना है। मुझे तो ऐसे ही बोलना है लेकिन देवी पर मैं बोलूंगा नवरात्रि में। विंध्यवासिनी जो महाशक्तिपीठ है वहां आनेवाली अश्विन नवरात्र में कथा है तब वहां मेरी त्रिभुवनी चेतना के अनुसार मैं 'मानस-देवी' अथवा 'मानस-श्रीदेवी' क्या नाम रखूं? क्योंकि श्रीदेवी नाम रखने में मुझे डर है! हमारे बाबा कहीं यह अर्थ न निकाल ले! लेकिन वो भी तो देवी है, जिसके पास जो विद्या है, कला है, जो भी है। और मैं अपने दिल की बात कहूं कि यह जो हमारी वैदिक देवियां, पौराणिक देवियां, शास्त्र में संपादित देवियां यह सब देवियां तो हमारे लिए हमारा मूल है, हमारा बीज है; सब कुछ हमारा है लेकिन तलगाजरडा की इच्छा है, वर्तमान देवियां पूजी जाए। इनमें भी कोई द्रौपदी है, इनमें भी कोई कौशल्या है, इनमें भी कोई गार्गी है, कोई सरस्वती है। यही उनकी प्रतिष्ठा विशेष है। तो वर्तमान में जो हमारी देवियां है तो उसके बारे में जो त्रिभुवनी चेतना बुलायेगी, मैं बोलूंगा।

तो मैंने निर्णय कर लिया रात को कि मैं इस बार 'मानस-देवी' करूंगा क्योंकि 'मानस' में दस देवियों का वर्णन है। तुलसी ने दस को देवी कहा। मैं सब कहूंगा। मैं मेरा पेपर नहीं फोडुंगा! लेकिन मेरे तुलसी ने कौशल्या को देवी कहा, सुमित्रा को देवी कहा, सुनयनाजी को देवी कहा, कैकेयी को देवी कहा, सरस्वती, पार्वती, सीता, वनदेवी, ग्रामदेवी और गंगादेवी; दस-दस देवी। शायद मेरे चित्त में मेरे गुरुकृपा से प्रवाह चला तो यही दस विद्या है। तो 'मानस-देवी' या 'मानस-श्रीदेवी।' 'उभय बीच सिय सोहति कैसे।' मेरे तुलसी ने रामपथ का दर्शन देते हुए कहा कि राम आगे हैं, लक्ष्मण पीछे हैं, बीच में जानकी जा रही है तो कैसा लग रहा है? 'उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें।' जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया। और यहां कहा गया कि विद्या भी मैं हूं, अविद्या भी मैं हूं। वेद भी मैं हूं, अवेद भी मैं हूं। सर्वस्व है माँ। क्या नहीं है? अब माँ का एक रथ तलगाजरडा को विश्व के पट पर स्थापित करना है जो मैंने चामुंडा की कथा में कहा था चोटीला में कि एक देवी का एक रूप हमारे विश्व में आना चाहिए कि 'या देवी सर्वभूतेषु अहिंसारूपेण संस्थिता।' अब उसकी पूजा होनी चाहिए। अहिंसा; यद्यपि देवियां खड्ग लेती है, तलवार लेती है, त्रिशूल लेती है, जो-जो आयुध है ये रक्तपात कर देती है। लेकिन रक्त क्यों बहाती है? सामनेवाले को विरक्त करने के लिए। हनुमानजी ने भी लंकिनी को मुक्का मारा था और 'रुधिर बमत धरनी छनमनी।' वहां तुलसी का आंतर अभिप्राय है कि उसके मुख में से रक्त निकल गया इसका मतलब हनुमंत ने एक लंकिनी जैसी राक्षसी को आसक्ति से मुक्त करके विरक्तता प्रदान कर दी।

ये नवदुर्गा दस विद्या जितनी माताएं है, देवीमय जगत है। मैं पूरा हृदय से कहूं। मेरा राम क्या है? तुलसी कहते हैं, 'दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन।' राम दुर्गा है। तुलसी। कुछ भी कहो, राम पर ऊंगली उठाई कि मैं राम को ही मानता हूं। आपको 'रामायण' के पुंठे का कलर कैसा है वो भी पता नहीं है! आप बाल पंडित है साहब! बाल गंगाधर नहीं है। होना चाहिए बाल गंगाधर। जिसका पुण्यनाम भी यहां उच्चारित हुआ। तो मेरा कहने का मतलब साहब कि देवीमय जगत है। पूरा जगत शक्तिमय है। मैं हृदय से कहता हूं। तो 'दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन', ऐसा तुलसी ने कहा। और निराला की शक्तिपूजा। महाकवि निराला। उसने तो शास्त्र का आधार लिया। कुछ अपना कल्पन दिया, कुछ अपनी अंत:प्रेरणा से कहा। और आखिर में तो 'अंत:करण प्रवृत्तय:' आखिरी प्रमाण तो अंत:करण की प्रवृत्ति को हमारे यहां माना गया। राम ने जब रावण पर विजय प्राप्त किया तब दुर्गा की पूजा निराला ने कराई उसमें एक कमल टूटा; ऐसा कथानक कहीं मिलता है। और आखिर में जब कमल टूटता है तब राजीवलोचन राम ने अपने नेत्रकमल को समर्पित किया। तो इस सत्य को नकारा न जाय साहब!

तुलसी को किसी ने पूछा कि आप माँ के निर्गुणतत्त्व को मानते हो कि सगुणतत्त्व को मानते हो?

आप देवी को किस रूप में मानते हैं? तो तुलसी ने कहा, यह विवाद ही छोड़ो। मैं तो संवाद का आदमी हूं, विवाद छोड़ो। तो फिर भी आप जब एक इतना बड़ा 'रामचरित मानस' लिख रहे हैं तो आपको कुछ जवाब तो देना चाहिए, छटक जाओ वो ठीक नहीं! तो तुलसी ने कहा, 'हिय निर्गुन नर नयन सगुन।' मेरी आंख को सगुन मिले और मेरे हैये को निर्गुन प्राप्त हो। मेरा हृदय इतना विशाल हो, इतना व्यापक हो कि 'सीयाराम मय सब जग जानी।' 'सर्वं खल्वमिदं ब्रह्म।' जो बार-बार यह मंत्र, यह टुकड़ा यहां उच्चारित हुआ बाप! हृदय में निराकार माँ को रखो और आंखों में कभी सरस्वती, कभी महादुर्गा, कभी महालक्ष्मी। ये दोनों तत्त्वतः एक ही है। तो माताओं का चरित्र जब आता है, देवियों का चरित्र जब आता है तब कितने पात होते हैं? माताएं, बेटियां, बहनें, माता, देवीजगत है, उसमें सबसे बड़ा पात है अश्रुपात। हम सब जानते हैं, माताएं आज तक अश्रु बहाती है। या तो बेटे के लिए रोई है या तो कुमार को-पति को रास्ते पर लाने के लिए रोई है! या तो माँ के दुःख सहन न हुए, बाप का अपमान सहन न हुआ, उसके अश्रु बहते हैं। गोपीजन कहती है, 'निसदिन बरसत नैन हमारे।'

जो अश्रुपात करती है, यही दुर्गा के रूप में कभी रक्तपात करती है। और मैं तो चाहता हूं 'अहिंसारूपेण संस्थिता।' अब काल मांग रहा है, अब समय यही मांग रहा है। तो माताओं के द्वारा संसार को विरक्त कर दिया जाए। विकारी लोगों की दृष्टि में से आसक्ति निकालने के लिए उसने शस्त्र उठाये। माँ कभी कठोर नहीं हो सकती। लेकिन हमारे शब्दकोश में एक शब्द होता है; कृपा के बारे में हमारे कई पर्याय, सगोत्री शब्द मिलते हैं, उनमें एक है 'कठोर कृपा।' तो कठोर कृपा का हमारे यहां स्थान है। लेकिन माताएं रक्तपात करती है कई अर्थों में। कुछ बातें मेरी साधुता की मर्यादा है इसलिए मैं कुछ नहीं कह सकता। तीसरी बात, माताएं वाक्पात करती है। वाक्देवी की कल सुंदर चर्चा बहन ने की, पंचोली बहन ने। इतना ही नहीं, माताएं सूत्रपात भी करती है।

सूत्रपात, वाक्पात, रक्तपात, अश्रुपात, हिमपात। हिमालय के घर शैलजा आई। हिमालय पिघला, बिखरा। हिमालय से प्रकट हुई शैलजा। माताएं हिमपात करती है। कभी माताएं क्या रूप तेजस्विनी लेती है कि वो वीजपात भी करती है। चकाचौंध कर देती है दुनिया को; वीजपात भी करती है, हिमपात भी करती है, वाक्पात भी करती है और चक्षुपात। शृंगार के ग्रंथों में वर्णन आता है उसमें हम न जाए लेकिन यहां चक्षुपात का अर्थ है कृपादृष्टि। तारी एक दृष्टि मळे। माँ हुं तो कुपुत्र छुं। पण 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।' तू कभी कुमाता नहीं। चक्षुपात ये माता द्वारा होता एक पात है। शस्त्रपात; कभी खड्ग, कभी त्रिशूल वह शस्त्रपात है। एक-दो वस्तु मैं नहीं बोलूंगा और कभी-कभी वज्रपात करती है। एक गर्जना, महाकाली की एक गर्जना! 'गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी।' माँ जगदंबानुं एक आंसु अशोकवाटिकामां पड्युं त्यां सगर्भा राक्षसीओ हती एना गर्भपात थवा लाग्या! गर्भपात कर देती है माताएं। वह भी एक पात है। तो कई पात माताओं की कथाओं से जुड़े हुए हैं; उसके आधार है। यह सब अब मेरे दिमाग में बिना स्वाध्याय आ रहा है। लेकिन इसका मतलब प्लीज़, कोई यह न करे कि स्वाध्याय जरूरी नहीं है; स्वाध्याय बहुत जरूरी है। मैं रोज दो ग्रंथों का स्वाध्याय निरंतर एक दिन भी न चुकूं; मेरी श्वास रुक जाए लेकिन यह न रुके और वो है 'रामचरित मानस' का स्वाध्याय और 'भगवद्गीता' का स्वाध्याय। 'भगवद्गीता' यह मेरा गार्गी मार्ग है, 'रामचरित मानस' मेरा मार्गी मार्ग है। ये दोनों के बीच में तलगाजरडा बह रहा है।

मैंने सुना है ओशो कहा करते थे कि पुरुष कम रोता है, बहन लोग ज्यादा रोती है। इसलिए ओशो कहते हैं कि हार्टएटेक पुरुषो में ज्यादा आते हैं। बहन दिल खाली कर सकती है। और मैं तो गांव का हूं, गांव में रहता हूं। अभी भी गांव में रहता हूं। तो दो शे'र कहके मेरी वाणी को विराम दूं -

कितना महफ़ूज़ हूं एक कोने में।
कोई अड़चन नहीं अब रोने में।
उसको मैंने बचा लिया वर्ना,
डूब जाता वो मुझे डुबोने में।

(श्री कैलास गुरुकुल, महुवा में आयोजित संस्कृतसत्र-२०१७ में मोरारिबापू का प्रासंगिक उद्‌बोधन)

॥ जय सीयाराम ॥